कथनीयः—

अपभ्रंश काल के पश्चात् पुरानी हिन्दी का काल आया और वह विकसित होती हुई सन्त-महात्माओं के द्वारा भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर फैल गई व धीरे-धीरे खड़ी बोली के रूप में आई। इसके सँवारने में भारतेन्दु बाबू **हरिश्चन्द्र** तथा उनके मित्रवर्ग ने बड़ा काम किया। **बालकृष्णजी भट्ट, बालमुकुन्दजी गुप्त, मदनमोहनजी मालवीय, महावीरप्रसादजी द्विवेदी** तथा उनके **'सरस्वती-परिवार'** ने इसके निर्माण, प्रचार व प्रसार में कोई कसर न रक्खी। पूज्य पिता श्री **गिरिधरशर्माजी नवरत्न** का जीवन तो एक प्रकार से हिन्दी के लिये ही अर्पित हो गया। उन्होंने मानापमान की परवा किये बिना बरसों तक श्रम करके, बाबू गोपालचन्द्रजी मुकर्जी, मुकुन्दरामजी त्रिवेदी, प्रोफेसर जौहरी, श्री माधवराव विनायकरावजी किबे, इंस्पेक्टर बिलोरे, प्रोफेसर रावल, शिवसेवकजी तिवारी आदि सज्जनों की सहायता से किबे साहब के विशाल सरस्वती भवन में **'मध्य भारत-हिन्दी साहित्य-समिति'** को जन्म दिया और इस समिति की स्थापना करने के बाद बम्बई-काँग्रेस के समय पृथक्-पृथक् काँग्रेसनेताओं से मिल कर, उनमें हिन्दी की भावनायें भरीं और महात्मा गांधी को हिन्दी में दीक्षित किया। कहना न होगा कि लखनऊ—कांग्रेस में हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया। इस प्रकार हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा रही है, है और रहेगी। आज तो वह भारत की राजभाषा के रूप में भी विधान द्वारा मानली गई है और आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि, कर्त्तव्यनिष्ठ भारतवासियों व हिन्दीभाषियों के द्वारा १५ वर्ष से पहले ही पूर्ण रूप से राजभाषा का कार्य करने लगेगी। हमारा कर्तव्य है

कि हम उसे ऐसी सम्पत्तिशालिनी बना दें जिससे संसार—वासियों का उसकी ओर अनिवार्य आकर्षण हो जाय। इसके लिये हमें यह भी करना होगा कि जो कुछ भी उत्तमोत्तम साहित्य हमारी भगिनी-भाषाओं में है उसे हिन्दी में ले आयें और हिन्दी की श्रेष्ठ वस्तुएँ उन्हें दें। इसी विचार से प्रेरित होकर आज मैं गुजराती साहित्य की यह रूपरेखा राष्ट्र-भारती के चरणों में समर्पित कर रही हूं। इसके लेखक **हिम्मतलाल गणेशजी अंजारिया** एम० ए० एल-एल० बी० गुजराती भाषा के मार्मिक विद्वान हैं, जो पहले बम्बई-कार्पोरेशन के शिक्षाविभाग के अध्यक्ष थे और आज निवृत्ति में भी साहित्य-प्रवृत्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका यह पुस्तक सम्मेलन की उत्तमा (**साहित्यरत्न**) में निर्धारित पाठ्यग्रन्थ है। अपने बचपन के शिक्षक श्रद्धेय **श्री छेदालालजी चतुर्वेदी** साहित्यरत्न, डिवीजनल इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, भरतपुर, की अगाध प्रेरणा से ही मैं इसका हिन्दी भाषान्तर कर सकी हूँ। इस पुस्तक को हिन्दी में रूपान्तरित करवा लेने का सम्पूर्ण श्रेय मेरे उन्हीं 'मास्टर साहब' को है। श्रद्धेय श्री अंजारियाजी ने इसका अनुवाद करने की अनुमति प्रदान करके अपनी जो वत्सला ममता व्यक्त की है उसके लिये केवल कृतज्ञता व्यक्त कर देना ही पर्याप्त नहीं है। इतना ही नहीं, उन्होंने इसके अन्तिम परिच्छेद को पुनः नवीन रूप में लिख कर मई सन् १९५१ तक की सम्पूर्ण जानकारी दी है। इससे उनकी साहित्यदेवता की अर्चना की तीव्र लगन स्वतः प्रकट हो जाती है। उनके इस अथक परिश्रम व निष्काम सेवा भावना को मेरा मन कभी नहीं भूल सकेगा।

सस्ता-साहित्य वर्धक, अहमदाबाद के प्रमुख साहब श्री मनु सूबेदार ने इस पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति प्रदान की, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक में 'हेम्लेट' की अनुवादिका के रूप में हंसा मेहता का नाम आया है किन्तु जहाँ तक मैं जानती हूं; हैम्लेट व मर्चेन्ट ऑफ वेनिस के अनुवाद किन्हीं 'काठियावाड़ी' संज्ञा वाले सज्जन ने भी किये थे। इसी प्रकार गीतांजलि का गद्यानुवाद भावनगर की स्व० महारानी नन्दकुँवर बा का पढ़ने योग्य है। सर्व साधारण में प्रिय कवियों में 'केशवकृति' के कर्त्ता श्री केशवलाल हरिराम पट्टणी का भी उल्लेख किया जा सकता है। तत्त्वज्ञान में जिस भाँति विद्वद्वर आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव के 'श्रीभाष्य' व कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी के शांकरभाष्य के अनुवाद का उल्लेख है उसी प्रकार भाई श्री जेठालाल गोवर्द्धनदासजी शाह के अणुभाष्य के अनुवाद का उल्लेख किया जा सकता है और मगनभाई चतुरभाई पटेल कृत विस्तृत उपोद्घात सहित प्रस्थानत्रयी के गुजराती अनुवाद का भी। नाटकों में अनन्तराय प्रभाशंकरजी पट्टणी द्वारा अनूदित बर्नार्ड शा के प्रसिद्ध नाटक 'जॉन आफ आर्क' का भी उल्लेख करना अनुचित न होगा। निबन्धलेखकों में वाडीलाल मोतीलाल शाह के निबन्धों का उल्लेख होना अनावश्यक नहीं है। वर्तमान में लाठी के ठाकुर प्रह्लादसिंहजी 'राजहंस' की कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु यह यह बात भी ध्यान देने की है कि यह 'संक्षिप्त' इतिहास है अतः इसकी मर्यादा सीमित है और उसमें सब का उल्लेख नहीं किया जा सकता।

फिरदौसी के शाहनामा का गुजराती अनुवाद किसी पारसी सज्जन ने किया है। जिस प्रकार से बंगाली साहित्य का बृहद् इतिहास लिखा गया है उसी प्रकार गुजराती साहित्य का इतिहास लिखे जाने की भी आवश्यकता है। आज तो मैं इस लघु किन्तु प्रामाणिक पुस्तक को हिन्दी-भारती माता के चरणों में अर्पित करके आन्तरिक सुख का अनुभव करती हूँ।

नवरत्न सरस्वती भवन
झालरापाटन (राजस्थान)
२० जुलाई १९५१ ई०

'रेणु'

श्री. परम आदरणीय भाई —

श्री. सिद्धराजजी ढड्ढा को पाटन प्रवास

के शुभ अवसर पर सादर भेंट

नवरत्न सरस्वती-भवन
झालरापाटन सिटी

— नम्र बहिन-शकुन्तला
१९-११-१९५२

स म र्प ण
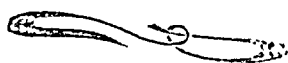
जो 'प्रेरक' व 'निमित्त' बने
उन्हीं पूजनीय
के
पुनीत कर-कमलों में
सादर !-

पुत्रीवत्-'रेणु'

अनुक्रमणिका

साहित्य-प्रारम्भिका

प्रकरण १,–नरसिंह-मीरां युग

जो गुजराती भाषा हम आज बोलते हैं वह १०० वर्ष पूर्व नहीं बोली जाती थी। आज भी हम यह भली भांति जानते हैं कि प्रान्त-प्रान्त की बोलियों में अन्तर होता है; इतना ही नहीं, प्रत्येक लेखक की भाषा में भिन्नता दिखाई देती है फिर भी यह तो निर्विवाद है कि सभी गुजरातियों की भाषा गुजराती ही है,-फिर वे चाहे दुनिया के किसी भी भू-भाग में क्यों न रहते हों!

आज से दो सौ वर्ष पूर्व की भाषा आज की अपेक्षा भिन्न प्रकार की था। ५००—६०० वर्ष पहले तो गुजरात, काठियावाड़, मेवाड़, मारवाड़ व मालवा प्रान्तों की भाषा एक ही थी।

भाषाओं में परिवर्तन होता ही रहता है। नवीन सम्पर्क बढ़ने से भाषा में मिश्रण व परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है। यदि जन समुदाय आग्रही हुआ और भाषा गठित हुई तो वह अधिक समय तक प्रचलित रहती है। परापूर्व से ही यह परिपाटी चली आ रही है। आर्य जब भरत खण्ड में आये तब वे वेदोक्त भाषा ही व्यवहार में लाते थे। धीरे धीरे यहां के मूल निवासियों के साथ उनका सम्पर्क बढ़ता गया; परिणामतः उनकी भाषा में भी विकृति आने लगी।

भाषा में भिन्नता उत्पन्न हो जाने पर जन-समाज का ऐक्य टिक सकना असंभव था। अतः आर्यों ने अपनी एकता को स्थायी रखने के उद्देश से वेदों की मूल भाषा के आधार पर अपनी विकृति पाती हुई भाषा का संस्कार करके एक सुन्दर, सर्व-मान्य तथा सर्वव्यापक भाषा का निर्माण किया और वह संस्कार पाई हुई भाषा थी संस्कृत। ब्राह्मणों, विद्वानों एवं उच्च वर्ग में संस्कृत का ही प्रयोग होने लगा। धर्मग्रन्थों का निर्माण संस्कृत में ही हुआ। संस्कृत के प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं सन्मान की भावना उत्पन्न की गई अतः 'भाषा' एक मात्र संस्कृत ही मानी जाने लगी। 'प्रकृति'——लोकसमुदाय की भाषा प्राकृत कहलाई। प्राकृत के लिये ऐसी लोकमान्यता थी कि वह संस्कृत से ही विकृति पा कर बनी है भिन्न २ देशों की प्राकृत के लिए भिन्न २ विशेषण प्रयुक्त किये गये। मगध देश की प्राकृत मागधी, व शूरसेन-मथुरा के निकटवर्ती प्रदेशों में बोली जाने वाली प्राकृत शौरसेनी कह-लाई। उत्तर हिन्द में इस प्रकार की पांच प्राकृतें व्यवहार में लाई जाती थीं:—मागधी, शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री तथा अपभ्रंश।

इन प्राकृतों में से अपभ्रंश मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट (काठियावाड़) में व्यवहृत होती थी। गुजरात-सौराष्ट्र पर गुर्जरों के आक्रमण हुए। मूल निवासियों के साथ गुर्जर ऐसे घुलमिल गये कि भाषा पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में वह भाषा इतनी बदल गई कि उसे हम अपभ्रंश कह ही नहीं सकते। तत्पश्चात् भी परिवर्तन जारी ही रहे। चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में वह ऐसी हो गई जिसे हम गुजराती का प्राचीन स्वरूप मान सकते हैं। परिवर्तन फिर भी चालू रहे। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में भाषा

का जो स्वरूप निश्चित हुआ उसे "गुजराती" संज्ञा दी गई।

हमारी भाषा के सर्व प्रथम 'गुजराती' नाम का प्रयोग प्रेमानन्द ने अपने 'दशम स्कन्ध' में किया है। अन्य सभी लेखकों ने भाषा को "प्राकृत" ही कहा है।

अपभ्रंश में परिवर्तन होते रहे,-भाषा का स्वरूप बदलता गया। १४—१५ वीं सदी में भाषा का जो स्वरूप स्थिर हुआ वह "प्राचीन गुजराती" कहलाया। अतः गुजराती भाषा का प्रारम्भ १४—१५ वीं सदी से होता है और तभी से गुजराती साहित्य का यह इतिहास भी प्रारम्भ किया गया है।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी का प्राचीन गुजराती का नमूना यह है:—

"राजपुत्र ! तम्हो शुं सांभलशुं मुज दुखणी नुं मर्म ?
अभागिणी हूं अति पापिणी ! क्रूर कर्यां बहु कर्म !
जन्म थकी वैराग्य वारता, सुख केरुं नहि लेश ;
तेह सांभली नि शुं करशु ? शोक कथाइ नरेश ?
इम करतां जो सांभलवा नुं कौतक हुइ मंनि ;
कथा सहू हूं कहूं, साँभलु स्थिर थई राजन !"

'ने' के स्थान पर 'नि', 'एम' के स्थान पर 'इम' 'सांभलशो' के स्थान पर साँभलशुं तथा मंनि, कथाइ इत्यादि प्रयोग प्राचीन गुजराती का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

नरसिंह मेहता इसी प्राचीन युग का लेखक है किन्तु उसके पद कण्ठोपकण्ठ द्वारा सुरक्षित रहने से, युगानुसार परिवर्तित होते रहे हैं। अतः उन पदों की मूल भाषा का स्वरूप जान सकना अत्यन्त कठिन है।

नरसी के पदों द्वारा हम उसके समय की भाषा का स्वरूप नहीं जान सकते किन्तु उसी युग के लेखक 'भालण' की कादम्बरी हमें उस युग की भाषा के स्वरूप का परिचय देती है। कादम्बरी की भाषा अपने मूल रूप में सुरक्षित होने से अपनी युग भाषा की प्रतीक है।

प्राचीन कवियों की कृतियों के प्रकाशन में आज तक इसी पद्धति को अपनाया गया है कि भाषा को आधुनिक रूप देने से ही पाठक उसका यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। इसी दृष्टि कोण को ध्यान में रख कर "बृहत्काव्यदोहन" तथा 'प्राचीन काव्यमाला' की भाषा के स्वरूप को बहुत परिवर्तित कर दिया है।

नरसिंह-मीरा के काव्यों की भाषा तो अपने मूल रूप में सुरक्षित रह ही नहीं सकी है।

अब धीरे धीरे यह दृढ़ धारणा हो गई है कि प्राचीन कवियों की पुरातन भाषा को अपने मूल रूप में ही सुरक्षित रखने से अध्ययन में बहुत सरलता रहती है; अतः अब प्राचीन कवियों की मूल भाषा को ही सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है, यह एक शुभ चिह्न है।

नरसिंह मेहता

[सम्वत् १४७०-१५३६ वि०]

गुजराती भाषा के प्राचीनतम तथा आदि कवि के रूप में नरसिंह मेहता सारे गुजरात तथा गुजरात के बाहर भी खूब विख्यात हैं। ये जूनागढ़ (काठियावाड़) के निवासी थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेकों किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं यदि इनमें से सार निकाला जाये तो ऐसा प्रमाणित होता है कि नरसी अपने

बचपन में गंवार तथा धुनी लड़का था। काम धन्धे में मन न लगाने से भाभी के ताने सुनने पड़े और इससे मन को असीम दुःख हुआ। दन्त कथाओं से यह भी पता चलता है कि भाभी के दुर्वचनों से रूठ कर वे ननिहाल की ओर चल दिये। वे ननिहाल पहुंचे कि नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता किन्तु ननिहाल जाते समय मार्ग में वे गोपनाथ महादेव के मन्दिर में दर्शन करने गये और वहीं महादेव की पूजा करने बिराज गये। उन्होंने ऐसी निष्ठा तथा अनन्य भाव से श्री गोपनाथ की सेवा की कि सदा-शिव प्रसन्न हो गये। महादेव कृष्ण की रासलीला देखने के लिए जा रहे थे। वहीं वे नरसी को भी अपने साथ लिवा ले गये रास-लीला देखकर नरसी मेहता ऐसे तन्मय तथा कृष्णमय बने कि उसी क्षण से वे कृष्ण भक्ति में मस्त तथा मग्न हो गये।

रासलीला के दर्शन करके कृष्णभक्त बन जाने के बाद मेहता वापस जूनागढ़ लौट आये। भाभी के साथ की उनकी अनबन दूर हो गई। भाई ने उनका विवाह कर दिया। इनके दो सन्तानें हुई,-एक पुत्र तथा एक पुत्री। नरसी मेहता की आजी-विका के सम्बन्ध में कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी किन्तु संभवतः वे कृष्ण भक्त के रूप में भजन-कीर्तन करते होंगे, कवितायें बनाते होंगे। जीवन गरीबी में ही व्यतीत करना पड़ा होगा।

नरसिंह मेहता की कृतियों में ज्ञान की उत्कृष्टता तथा सर्जनशक्ति की संस्कारशील उच्चता को देखते हुए यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि उन्हें संस्कार बहुत ही अच्छे मिले थे। उनका तत्त्वज्ञान निश्चित तथा गहन है; उनका सांसारिक ज्ञान विशाल तथा निर्मल है और उनका लेखन सरल होने पर भी भाषा पर प्रभुत्व तथा रचना में कलाकौशल का समावेश करने वाला है। उनकी कविता में गीतमाधुर्य तथा भावमाधुर्य इतनी

सरलता से समाविष्ट हो जाते हैं कि नैसर्गिक प्रतिभा तथा अथक परिश्रम के सुमेल बिना ऐसा कौशल भाग्य से ही आ पाता है।

नरसिंह मेहता ने कब और किसके पास अध्ययन किया, यह अज्ञात के गर्भ में ही है। केवल यह अनुमान किया जा सकता है कि जूनागढ़ छोड़ने के पश्चात् गोपनाथ की सेवा में उन्होंने जो समय व्यतीत किया, वहाँ संभवतः उन्हें कोई गुरु मिल गया होगा। वहां प्राप्त किये ज्ञान को उन्होंने श्रवण-पठन के द्वारा विशाल बनाया होगा। ऐसा हो सकना संभव भी है।

नरसिंह की प्रभातियां और ज्ञान के पदों में बुद्धि तथा कवित्व का जो तेज जगमगा रहा है वह गुजराती में ही नहीं अपितु अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी क्वचित् ही मिलता होगा। प्रभातियां तो गुजरातियों का अमर धन है। घरेलू, सर्व सुलभ भाव, स्वाभाविक विचार, मधुर आलंकारिक भाषा में ग्रामीण तथा नागरिक, सब प्रकार के व्यक्तियों को तत्काल ही मुग्ध कर देने वाली सर्वप्रिय विषयों से परिपूर्ण अनेकानेक गुणों से युक्त होने के कारण नरसिंह की प्रभातियां गुजरात के गाँव गांव और घर-घर में गाई जाती हैं।

'जाग ने जादवा; जल कमल छांडी जा ने बाला; जे गमे जगत गुरुदेव जगदीश ने; अखिल ब्रह्माण्ड मां एक तूं श्रीहरि; निरख ने, गगन मां कोण घूमी रह्यो?' इत्यादि प्रभातियाँ आज भी गाँव-गांव और घर-घर में गूंज रही हैं।

नरसिंह मेहता ने सुदामा चरित्र, चातुरी, सहस्र पदी रास आदि बहुत कुछ साहित्य लिखा है। ऐसी भी मान्यता है कि उन्होंने निज जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ लिखा है। 'हारमाला' के लिए अभी दो मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान उसे नरसिंह मेहता

कृत तथा कुछ विद्वान प्रेमानन्द कृत मानते हैं, किन्तु सत्य तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेहता ने इसके कुछ पद लिखे होंगे। उनके परवर्ती लेखक उन पदों में अभिवृद्धि करते रहे होंगे। प्रेमानन्द ने उन पदों को फिर से लिखा होगा। उन्होंने नरसिंह मेहता तथा अन्य लेखकों के द्वारा लिखे गये पदों का निज मति के अनुसार परिष्कार करके, उनमें कुछ नये पद और जोड़कर "हारमाला" तैयार कर ली होगी।

यह विषय अभी विवादास्पद ही है। अनुसन्धान द्वारा सत्यान्वेषण करने का अभी समय है। यदि कोई धुन का पक्का अध्येता निकल आवे तो अब भी कुछ नवीन वस्तुएं प्रकाश में आ सकती हैं। ऐसे विषयों में पूर्वाग्रह या मताग्रह रखने से सत्य आच्छादित हो जाता है।

नरसिंह मेहता का समय संवत १४७० से १५३६ वि० तक माना जाता है।

भालण

(संवत् १४९०—१५७० वि०)

नरसिंह मेहता के अतिरिक्त और भी अनेकों लेखक हो गये होंगे किन्तु अब तक उनमें से बहुत ही कम प्रकाश में आये हैं। अध्ययन एवं अनुसंधान जारी रहेंगे त्यों त्यों अन्य लेखक भी प्रकाश में आते जायेंगे। अभी भी कुछ लेखकों की जानकारी प्राप्त हुई है। उनमें से नरसिंह मेहता के समकक्ष में रक्खा जाने वाला एक लेखक भालण है।

भालण सिद्धपुर पाटण का निवासी था। उसने संस्कृत गद्य काव्य कादम्बरी का गुजराती में पद्यबद्ध भाषांतर किया है।

यह अक्षरशः भाषान्तर तो नहीं है किन्तु कथा वर्णन के मुख्य २ अंश उसमें आ गये हैं। वह भाषान्तर पुस्तक भण्डार में पड़ा रहा। उसका विषय संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वानों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्यों की समझ से परे था अतः उस पुस्तक की भाषा अपने मूल रूप में ही सुरक्षित रही। वह उसी रूप में प्रकाशित भी हुई है। इससे हमें प्राचीन गुजराती भाषा का परिचय प्राप्त करने की सुविधा मिल गई।

कादम्बरी के अतिरिक्त भालण ने सप्तशती, नलाख्यान तथा दशमस्कन्ध भी लिखे हैं। मुख्य तया तो उसके रामबाललीला के पद अत्यन्त ही हृदयहारी हैं। उन पदों में माता की अधीरता, बालक के प्रति हृदय की कोमल भावनाओं का वर्णन बाल भावना तथा बालक्रीड़ा का वर्णन इतनें सुन्दर तथा रोचक ढंग से हुआ है कि सहसा हृदय लुब्ध हो जाता है।

भालण के अतिरिक्त अन्य लेखक भी धीरे धीरे प्रकाश में आते जा रहे हैं।

कुछ अन्य लेखक

कायस्थ कवि **केशव** ने 'कृष्णलीलामृत' काव्य लिखा है। यह कवि प्रभास पाटन का निवासी था और सं. १५२६ वि० में जीवित था।

सं. १५४० वि. में लिखी गई ' हरिलीला-षोड़शकला ' का लेखक **भीम** भी इसी काल में हुआ है। भीम ने ये कलायें एक संस्कृत पुस्तिका के आधार पर लिखी है। इनमें भागवत का सार कविता में लिखा गया है। संस्कृत का आधार लेकर लिखी जानें पर भी यह पुस्तक स्वतन्त्र (मौलिक) रचना जैसी प्रतीत होती है।

सम्वत् १५१२ वि० में पद्मनाभ ने 'कान्हड़दे प्रबन्ध' लिखा है। इसमें एक दुर्ग पर घेरा डालने का युद्ध वर्णन है। अस्त्र शस्त्रों की जानकारी, युद्ध की तैयारी तथा युद्ध के समय के, मनुष्यों के मनोभावों का इस पुस्तक में सफल चित्रण हुआ है। इस प्रकार का नवीन साहित्य प्रस्तुत करने वाली इस पुस्तिका का अच्छा प्रचार हुआ है। इसके अतिरिक्त हर सेवक ने 'मयण रेहा रास'; जयशेखर ने 'त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध' हीरानन्द ने 'वस्तुपाल-तेजपाल रास', जनार्दन ने 'उषा हरण', कर्मण मन्त्री ने 'सीता हरण', किसी अज्ञात कवि ने 'वसन्त विलास' लावण्य समय ने 'विमल प्रबन्ध' पुस्तकें लिखी हैं जो खोज करने पर अब प्रकाश में आई हैं। इनमें से कुछ पुस्तकें तो प्रकाशित भी हो चुकी हैं। सम्भव है, अनेकों लेखक (रचनाकार) अभी अज्ञात के गर्भ में लीन होंगे। सम्भव है, उनमें कोई सत्त्वशाली लेखक भी छुपा पड़ा हो! यह तो प्रत्यक्ष ही है कि अभी अधिक अनुसंधान तथा आग्रह पूर्ण अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है।

मीरा

(सं. १५५५-६० से १६२०-२५ वि० तक)

नरसिंह मेहता की भाँति ही मीराबाई भी एक भक्त के रूप में सारे भारत में प्रसिद्ध हैं। गुजरात के श्रेष्ठ कवियों में तो उन की गणना होती ही आई है।

लगभग अर्द्धशताब्दि पहले यह मान्यता थी कि गुजराती साहित्य का प्रारम्भ नरसिंह-मीरा से हुआ है और उस युग में केवल भक्ति साहित्य ही लिखा जाता था। उस युग को भक्तियुग

के नाम से ही पुकारा जाता था। इसका कारण यह था कि कण्ठो पकण्ठ से प्रचलित भजनों तथा भक्ति के पदों से ही जनता परिचित थी। किन्तु धीरे धीरे अन्य साहित्य भी प्रकाश में आने लगा; अन्य ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त होने लगी और यह प्रत्यक्ष होता गया कि उस युग में भी आख्यान, प्रशस्ति, काव्य, सम्वाद, वार्ता आदि लिखे गये हैं। **श्रीधर** ने सं. १४५४ वि. में 'रणमल्ल छन्द' लिखा है। **भीम** ने सं १४६६ वि. में 'सदयवत्स चरित' का प्रणयन किया। प्रबोध-बत्तीसी, वसन्त विलास विमल प्रबन्ध, उषा हरण इत्यादि विभिन्न प्रकार की कृतियाँ प्राप्त हुई हैं, अतः नरसिंह-मीरा युग को केवल 'भक्ति-युग' ही नहीं कहा जा सकता।

उक्त समस्त कृतियों में बहुत ही कम कृतियाँ उच्च श्रेणी में रक्खी जा सकती हैं। भालण की कादम्बरी अवश्य श्रेष्ठ पुस्तक है।

मीराबाई की कृतियाँ परिमाण में कम हैं किन्तु उनमें लोक-मानस को प्रभावित करने का गुण उच्च कोटिका है। नरसिंह मेहता की प्रभातियों की भाँति ही मीराबाई के भजन गुजराती हृदयों को तल्लीन बनाने में अत्यधिक सफल हुए हैं। मीराबाई की वाणी में ऐसा मनमोहक आकर्षण है, उनके नारी हृदय के भावभरित उद्‌गारों में ऐसी मोहिनी है कि प्रत्येक हृदय को बलात् वशीभूत कर लेती है।

मीराबाई की कृतियों में विषय वैविध्य तनिक भी नहीं है। मीरा भक्ति की धुन में तल्लीन हैं, अपना सारा समय वे कृष्ण के ही साथ बिताती हैं, कृष्ण के सहवास में आनन्द मनाती हैं, कृष्ण के विरह से उत्पन्न वेदना को व्यक्त करती हैं। उनके आत्म कथन विषयक दो-चार पदों में भी कृष्ण भक्ति ही प्रेरक तथा

प्राण संचारक है। मीराबाई ने ज्ञान-उपदेश आनन्द-उल्लास, धर्म-कर्तव्यनिष्ठा;—किसी की भी परवाह नहीं की। वे तो भक्ति में मस्त तथा कृष्ण सेवा में निमग्न रहीं। भक्ति में लीन होकर भजन गाने, कृष्ण साक्षात्कार का अनुभव करने तथा जीवन को श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित करके कृष्ण में एकरूप हो जाने में ही मीरा का आनन्द है! यही उनका जीवन है!

'कानुड़ों न जाणे मारी पीड़; नहिं रे विसारूँ हरि; घेलों अमे भलों थयों; सतभामा नुं रूसणुं" इत्यादि भजनों के भाव तथा रस-प्रवाह गुजरात में इतने परिचित तथा लोकप्रिय हैं कि (केवल २००—२५० के लगभग पद संख्या होने पर भी) गुजरात की जनता मीराबाई को अनन्य भक्त तथा श्रेष्ठतम कवि के रूप में पूजती आई है।

नरसी मेहता के काव्य की भाँति ही मीराबाई के पद भी हमें अपने मूल रूप में नहीं मिलते हैं। उस युग में मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र प्रान्त में एक ही बोली जाती थी इसी लिये मीराबाई के पद सर्वत्र प्रचारित हो गये; किन्तु समय के अनुसार ही भाषा भी परिवर्तित होती गई और मीराबाई के पद भी तत्कालीन स्वरूप ग्रहण करते गये। कण्ठोपकण्ठ द्वारा प्रचार पाने वाले साहित्य में इस प्रकार के परिवर्तन होते ही रहते हैं।

मीराबाई के पदों में दो प्रकार के परिवर्तन हुए-(१) गुजरात में प्रचलित पद गुजराती स्वरूप ग्रहण करते गये और (२) मेवाड़, मारवाड़ तथा उत्तर हिन्द में प्रचलित गीत धीरे धीरे हिन्दी स्वरूप ग्रहण करते गये। मीराबाई के पद हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में मिलते हैं।

मीराबाई मेड़ता के राठौर रतनसिंह की सुपुत्री थीं और चितौड़ के कुम्भा राणा के पुत्र भोजराज जी के साथ उनका विवाह हुआ था। विवाह होने के कुछ ही समय पश्चात् भोजराज जी युद्ध क्षेत्र में काम आये। मीराबाई विधवा हो गई। किन्तु उनका मन बचपन से ही कृष्णभक्ति में लीन था इस लिये वैधव्य का असह्य दुःख उन्हें नहीं व्यापा। वे तो कृष्ण भक्ति में ही अपना जीवन समर्पित कर रही थीं, इस लिये सांसारिक सुखोप-भोग के लिये उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था। उनका जीवन भजन-कीर्तन करने, साधुसन्तों को एकत्रित करके भक्तिमय जीवन बिताने, कृष्ण की सेवा तथा सान्निध्य प्राप्त करने और अन्त में कृष्ण को ही देह समर्पित करके कृष्ण में ही लीन हो जाने के लिए था। राजकुल की रीति के अनुसार रहन सहन रखने के लिये उन्हें बहुत समझाया गया किन्तु इस बात का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। स्वजन,-कुटुम्बियों ने उनको भाँति भाँति के दुःख दिये; इससे दुखी होकर उन्होंने घर, कुटुम्ब तथा स्वदेश का त्याग कर दिया और कृष्ण सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय कर वे द्वारिका चली गईं। अपनी आयु का शेष भाग उन्होंने वहीं रणछोड़राय जी की सेवा में व्यतीत किया।

कुटुम्बीजनों ने उन्हें वापस लौटा लाने का बहुत आग्रह किया किन्तु वे द्वारिका से वापस नहीं लौटीं। किंवदन्ती है कि राणाजी के अति आग्रह के वशीभूत होकर उन्होंने स्वदेश लौटना स्वीकार कर लिया था और वे रणछोड़राय जी की अन्तिम स्वीकृति लेने के लिये मन्दिर में गईं परन्तु वहाँ से वापस लौटीं ही नहीं। वे रणछोड़राय जी की मूर्ति में ही लीन हो गईं।

मीराबाई के जीवन के विषय में पहले अनेक मतभेद थे परन्तु अब यह निश्चित है कि उनका विवाह सम्वत १५७३ वि०

में हुआ था अतः उनका जन्म सं. १५६० माना जा सकता है। उनका अवसान कोई सं. १६०३ वि० में और कोई सं० १६२० वि. में मानते हैं।

नाकर

(सम्वत् १५५०-६० से १६३०-४० वि. तक)

मीराबाई द्वारिका में भक्तिमय जीवन व्यतीत करती थीं उसी काल में बड़ौदा (गायकवाड़) में नाकर नामक एक वैश्य कवि आख्यानों पर आख्यान रचता चला जा रहा था और उन आख्यानों को एक ब्राह्मण को प्रदान करके वह उसकी आजीविका के उपार्जन में सुगमता कर देता था।

प्रेमानन्द के पहले भी अनेक आख्यानकार हो गये हैं और उनमें से किसी-किसी ने तो असंख्य आख्यान लिखे हैं किन्तु वे काव्यगुण से रहित होने के कारण अल्पजीवी ही रहे। नाकर के आख्यान भी कवित्व तथा सत्व से विहीन हैं।

लोग उस समय आख्यान सुनने के प्रेमी थे। ब्राह्मण आख्यानों को गा कर अपनी जीविका उपार्जन करते थे अतः कई लोग इस काम को भी करते थे। नाकर को इस बात का चस्का लग गया। वह ब्राह्मण तो था नहीं इस लिये जीविका उपार्जन करने के लिये तो उसे इन आख्यानों की आवश्यकता थी ही नहीं; किन्तु आख्यान रचने की रुचि उत्पन्न हो जाने से उसने यह कार्य बहुत ही उमंग तथा उत्साह से जारी रक्खा। वह अपने स्वरचित आख्यानों को एक ब्राह्मण को दे दिया करता था और वे ब्राह्मण देवता उनसे अपनी आजीविका अर्जित करते थे। यों नाकर ने

अपने आख्यानों के द्वारा परोपकार का साधन भी किया !

अन्य लेखक—

अन्य आख्यानकारों में कादम्बरीकार भालण के पुत्र **उद्धव** तथा **विष्णुदास**; एवं खम्भात निवासी **विष्णुदास** हैं। इन तीनों ने उचित मात्रा में रचनायें की हैं। इनकी कुछ कृतियाँ प्राप्त भी हुई हैं।

उस युग में कथाकार भी हुए थे। 'रसमंजरी' के कर्ता **वछराज** का समय सम्वत् १६०० वि. माना जाता है। **तुलसी, गोपालदास, वस्ता** भी इसी युग के माने जा सकते हैं। वस्ता का समय संवत १६५३ तथा गोपालदास का संवत् १६२५-३० वि. में माना जाता है। ये दोनों लेखक विशेष ध्यान आकर्षित करने वाले हैं। गोपालदास ने श्रीमद् वल्लभाचार्यजी का जीवन चरित्र 'वल्लभाख्यान' लिखा है। वल्लभ संप्रदाय वालों में वह एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। व्रज भाषा में उसकी टीका भी हुई है। वल्लभाख्यान की भाषा संस्कारशील तथा अध्ययन करने योग्य है। गुजराती विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों में ऐसे ग्रन्थों को स्थान न मिलना शोचनीय है।

वस्ता

वस्ता बोरसद का रहने वाला था। वह जाति का कोली था एवं डोडिया कुल में उत्पन्न हुए **काला** का पुत्र था। ऐसी अशिक्षित तथा पिछड़ी हुई जाति में भी इस प्रकार के संस्कारशील जीव लेखक बनें एवं सम्माननीय पद प्राप्त करें यह हमारे समाज के लिये कितने सन्तोष एवं गौरव की बात है !

बस्ता को बचपन में एक साधु की संगति मिल गई और वह उसके साथ ही चल दिया। बुरहानपुर में साधु के अखाड़े में रह, त्यागी बन कर उसने साधु जीवन व्यतीत किया।

उसने संवत् १६५३ वि० में 'शुकदेव आख्यान' लिखा। यद्यपि उस कृति में कोई विशिष्ट गुण तो है नहीं फिर भी बस्ता जैसे लेखक ऐसी जाति में उत्पन्न हों, यह बात हमारे समाज के लिये बड़ी ही सारगर्भित है!—अर्थ सूचक है!!

इस प्रकरण में आरम्भिक गुजराती साहित्य के कतिपय लेखकों का परिचय दिया गया है; एवं जिन कृतियों का उल्लेख किया है उनमें से अनेकों प्रकाशित हो चुकी हैं और वे (चाहे कठिनता से ही सही) प्राप्त भी की जा सकती हैं। नरसिंह–मीरा की कृतियाँ तो सहज लभ्य हैं; भालण तथा नाकर के ग्रन्थ भी अब सुलभ हैं। अन्य अनेकों ग्रन्थ 'बृहत्काव्य दोहन' में प्रकाशित हुए हैं किन्तु उक्त ग्रन्थ के कुछ भाग अब अप्राप्य हैं अतः गुजराती साहित्य के अध्ययन में कठिनाइयाँ बढ़ने लगी हैं। फिर भी यह आशा अमर है कि पाठकों की संख्या में अभिवृद्धि होने से प्रकाशन-कार्य भी सरल हो जायेगा।

प्रकरण २-प्रेमानन्द युग

यह सत्य है कि साहित्य का जन्म आत्मतोष के लिये होता है; साथ ही यह भी सत्य है कि अन्य व्यक्तियों के उपदेशक तथा मार्गदर्शक बन कर अपने वर्चस्व को प्रकाशित करना साहित्यसर्जन में कारण रूप होता है। नरसिंह-मीरा जैसे भक्तों ने आत्मानन्द के लिये ही लिखा है किन्तु उन्हें भी इतर जन-समुदाय का ध्यान तो रहा ही होगा। साहित्य मात्र की उत्पत्ति के मूल में परोपदेश सन्निहित रहता है। लोक में व्याप्त दम्भ एवं ढोंग कि निन्दा करके उचित उपदेश देना साहित्यसर्जक अपना कर्तव्य समझते हैं। कुछ साहित्यकार तो सीधे आक्षेप द्वारा ऐसा करते हैं और कुछ परोक्ष रीति से इस हेतु को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अखा ने अपने 'छप्पा' के द्वारा यही कार्य किया है। किन्तु अखा के पूर्व भी मांडण नाम के वन्धारा (छींपा) जाति के एक लेखक ने 'प्रवोध-वत्तीसी' लिख कर अखा जैसा ही कार्य किया है। माँडण का जन्मकाल सं० १५२५ माना जाता है। उसके सौ-सवा सौ वर्ष के वाद अखा ने वैसा ही साहित्य सर्जन किया। अधिक प्रभावोत्पादक तथा लोकरुचिकर नवीन साहित्य के सर्जन से प्राचीन साहित्य भुला दिया जाता है। अखा के 'छप्पा' की लोक प्रियता के कारण माँडण का प्रवोध वत्तीसी को लोग भूल ही गये।

अखा

(सं० १६७१—१७३० वि.)

लोक-जीवन में समाविष्ट क्षतियों, त्रुटियों एवं विचित्रताओं की कटु आलोचना करके, तथा व्यंग पूर्वक सद्‌बोध प्रदान करने वाले 'छप्पा' लिख कर अखा ने मनुष्य-स्वभाव का सुन्दर परिचय कराया है।

सांसारिक मनुष्यों के जीवन में ही त्रुटियाँ रहती हों यह बात नहीं है किन्तु त्यागी, विरागी और धार्मिक जीवन व्यतीत करने वालों में भी कैसे दम्भ, कैसे अनाचार, अत्याचार और कैसे पापभरित आचरण घर कर गये हैं, इस पर भी उदाहरणों तथा दृष्टान्तों के द्वारा अखा ने सत्य प्रकाश डाला है। कुल ७४६ छप्पों में ही उसने तत्त्वज्ञान, यथार्थ आलोचना, दोषों का प्रकटीकरण, गुणों की प्रशंसा, उत्तम उपदेश,—सब कुछ लिख डाला है।—अखा की शैली समास-प्रधान तथा अर्थघन होने से कहीं कहीं दुर्बोध हो उठी है। 'छप्पा' की अपेक्षा अन्य कृतियों में कुछ विस्तार और विवेचन अधिक हैं तथापि वेदान्त प्रचार की दृष्टि से लिखी गई होने के कारण सामान्य पाठकों के लिये वे दुर्बोध हैं। 'पंचीकरण', अखे-गीता, गुरु शिष्य संवाद, अनुभव बिन्दु तथा अनेकों भजनों आदि ज्ञानपरक साहित्य के वाचक विरले ही मिलते हैं।

अखा जाति का स्वर्णकार था और वह यही धंधा करता था। वह चरित्रनिष्ठ तथा प्रामाणिक था और कलाकौशल में अत्यन्त निपुण था। उसकी कार्यकुशलता तथा नीतिमत्ता के कारण ही उसे टकसाल में कार्य मिला था। ऐसे कार्यों में यश की अपेक्षा

अपयश ही अधिक मिलता है। दुर्भाग्य से, यह अनुभव अखा को भी प्राप्त हुआ। अन्त में उसके चरित्र की जाँच कीगई और वह निर्दोष प्रमाणित हुआ। किन्तु इस घटना से अखा का मन संसार से विरक्त हो उठा। सांसारिक विरक्ति का कारण अन्य घटनायें भी थीं। बहिन की अकाल मृत्यु हो जाने से अखा को जीवन की समस्या बहुत ही उलझन भरी लगी। और भी, एक महिला को अखा ने अपनी धर्म बहिन बनाया। अखा ने उसे एक स्वर्ण की माला भेंट में दी। बहिन को वह माला बहुमूल्य लगी। उसके मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि क्या यह माला बिलकुल शुद्ध है उसने उस माला की कसौटी करवाई। कसौटी करने के लिये माला को बीच में से थोड़ा काटना पड़ा था और उस बहिन ने उसे सुधार देने के लिये अखा को ही दिया। जब अखा को सच्ची घटना का पता चला तो उसे संसार तथा संसारियों के प्रति घोर घृणा हो गई। घर के सब कामधन्धों को तिलाँजली देकर वह सद्‌गुरु की खोज में निकल पड़ा। गुरु की खोज में भी उसे बड़ी निराशा हुई। धन हरने वाले तो अनेकों गुरु मिल गये किन्तु सच्चा ज्ञान देने वाला एक भी गुरु नहीं मिला। अखा को बड़ी झुंझलाहट पैदा हुई किन्तु उसकी ज्ञान-पिपासा तीव्र थी। वह अनेकों धर्माचार्यों तथा साधुसन्तों की मण्डली में भटका !—अन्त में उसकी श्रद्धा फलीभूत हुई ! उसे सच्चे गुरु प्राप्त हुए और उनके पास 'ज्ञान' प्राप्त करके वह कृत कृत्य हुआ।

"दंभ, ढोंग और स्वार्थी जीवन में निमग्न जगत में भी विरल सन्त पुरुष होते ही हैं। यदि सच्चा ज्ञान प्राप्त करना हो; शान्ति प्राप्त करनी हो तो सद्‌गुरु को प्राप्त करके हरि, गुरु और सन्त की सेवा करो। तभी जीवन की सफलता है।"—इस प्रकार के उपदेश अखा ने खूब दिये हैं।

अखा की जीवन-अवधि सम्वत् १६७१ वि. से १७३० वि. तक मानी जाती है।

प्रेमानन्द

[सम्वत् १६६२-१७९० वि०]

गुजरात के कवियों में प्रेमानन्द श्रेष्ठ गिने जाते हैं। वे थे तो आख्यानकार कथा-भट्ट, किन्तु उनके आख्यान इतने रसपूर्ण और लोक प्रिय हुए कि उनकी गणना कवियों में होने लगी और वह भी प्रथम श्रेणी के कवियों में !

प्रेमानन्द के पहले और बाद में अनेकों आख्यानकार हो गये हैं किन्तु प्रेमानन्द के आख्यानों में जन साधारण को रुचिकर लगने वाले अनेकों गुण भरे पड़े हैं। उनके किसी-किसी आख्यान में अच्छा कवित्व है। रसभरी लेखन शक्ति के कारण लोकप्रियता प्राप्त करने के गुण तो उनके अनेकों आख्यानों में भरे पड़े हैं अतः प्रेमानन्द को जो यश तथा प्रशंसा प्राप्त हुए वे बहुत कुछ अंशों में उचित ही हैं।

जनता को अपने दैनिक जीवन में ज्ञान तथा मनोरंजन की आवश्यकता भी रहती है। प्राचीनकाल में, संस्कृत कथाओं को गुजराती में कह सुनानेः वाले ब्राह्मणों के द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति होती थी। ऐसी कथायें कहने वाले पौराणिक कहे जाते थे। कथायें कहने के लिये पुराणों का आश्रय लेने के कारण कथा-भट्ट पौराणिक कहलाते थे। धीरे धीरे उन ब्राह्मणों में से कुछ ऐसे निकले जो संस्कृत के माध्यम द्वारा कथायें न कह कर गुजराती में ही गा-गा कर कथायें कहने लगे जिससे श्रोता अधिक आनन्दित

होते थे। गाने के साथ ही साथ ताल देने के लिये वे एक माण (ताँबे की गागर) अपने साथ रखते थे और अँगुलि में पहने हुए छल्ले के द्वारा उस गगरी पर ताल जमा कर आलाप छेड़ते थे। इस प्रकार से गा-गा कर कथा सुनाने वाले "माण-भट्ट" कहलाते थे! रात्रि के शान्त समय में ऐसी कथायें बड़ी सुहावनी लगती थीं इससे पौराणिकों के कथावाचन कम होते गये और अच्छे अच्छे माणभट्ट पौराणिकों की आजीविका में बाधक बन गये।

प्रेमानन्द ऐसे-ही एक माणभट्ट थे। उनके आख्यान रसमय तथा कतिपय साहित्यिक गुणों से युक्त थे अतः वे बहुत प्रचार पाये और स्थान-स्थान पर गाये जाते थे।

उन्होंने दशमस्कन्ध, नलाख्यान, सुदामा चरित, हुण्डी, श्राद्ध, हरिश्चन्द्राख्यान, चन्द्रहासाख्यान, ओखा हरण, अभिमन्यु, सुधन्वा इत्यादि असंख्य आख्यान लिखे हैं परन्तु वर्तमान में वे बहुत कम पढ़े जाते हैं। वे अब अधिकांशतः साहित्य के अध्येताओं के उपयोग में ही आते हैं। प्रेमानन्द रस उत्पन्न कर सकने में कुशल हैं। श्रोताओं को तन्मय बना कर, कथा-रस को विविध प्रकार से स्थिर रख कर श्रोताओं को रिझा लेने की कला में वे परम चतुर हैं; किन्तु आज के श्रोता एवं पाठक भी उससे रसमुग्ध बन जायँ,—इस प्रकार का अक्षय रस तथा कवित्व उनकी कृतियों में स्वल्प ही हैं। प्रेमानन्द अपने युग के सफल आख्यानकार थे। यह सच है कि गुजराती में उन्होंने असंख्य कृतियाँ रच डाली हैं फिर भी उनमें कुछ न्यूनतायें भी थीं। हँसाते समय वे पात्रता का का ध्यान भी भूल बैठते थे। पूज्य एवं श्रेष्ठ पात्रों के मुख से किसी किसी समय वे ऐसे तुच्छ आचारों एवं उद्गारों का प्रयोग कराते थे कि घृणा हो उठती है! उनकी कृतियों में इस प्रकार की क्षति का होना उनके युग की याभारी है किन्तु इतना स्वीकार कर

लेने पर भी उनका उचित मूल्यांकन करते समय हमें यह कहना ही पड़ता है कि यद्यपि वे बड़े भारी चमत्कारी लेखक थे फिर भी उनकी कृतियों में उच्च, निर्दोष, सच्चा साहित्य अति अल्प है। साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से प्रेमानन्द को महान् कवि मानने में कोई बाधा न होने पर भी उनकी कितनी कृतियाँ एकान्तशुद्ध एवं उच्च साहित्य में स्थान पा सकती हैं, यह विषय सदैव चर्चास्पद ही रहेगा।

प्रेमानन्द के नाम से तीन नाटक भी प्रसिद्ध हुए हैं। उनके विषय में यह शंका उठाई गई है कि वे नाटक 'नलाख्यान' के कर्त्ता प्रेमानन्द कृत नहीं हो सकते। 'प्रेमानन्द नाँ नाटको' नामक लेख लिख कर यह शंका नरसिंहराव ने उठाई है। इन नाटकों को प्रेमानन्द कृत स्वीकार करने वालों ने उस शंका के समाधान के हेतु अनेकों प्रतिवाद उपस्थित किये हैं। दोनों ही पक्ष अपने-अपने मत पर सुदृढ़ हैं अतः इस प्रश्न का हल हो सकना असम्भव है। गुजराती के साहित्य प्रवाह पर, उसमें रची गई कृतियों पर, गुजराती जनता के संस्कारों पर, प्रेमानन्द के युग पर आगे-पीछे के गुजराती जीवन पर, गुजराती में नाट्य-साहित्य के अत्यन्ताभाव पर और नाटकों को प्रेमानन्द द्वारा दी गई 'आख्यान' संज्ञा पर विचार करते समय सामान्य पाठक को यही लगता है कि प्रेमानन्द जैसे आख्यानकार को इन नाटकों की चमत्कृति कैसे सूझ गई?

इस प्रश्न पर भिन्न भिन्न प्रकार से, भिन्न भिन्न दृष्टि विन्दुओं के द्वारा निष्पक्ष रीति से चर्चा करना आवश्यक है। प्रारंभिका के पाठकों के लिये इतना संकेत ही पर्याप्त है वे नाटक नलाख्यान के कर्त्ता प्रेमानन्द कृत हों या किसी अन्य प्रेमानन्द द्वारा रचित हों,- वे तीनों नाटक सुन्दर हैं! पठनीय हैं! गुजराती साहित्य भण्डार

की श्रीवृद्धि करने वाले हैं! अध्ययन करने योग्य हैं! पाठकों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं! उन तीनों नाटकों के नाम (१) रोप दर्शिका, (२) द्रौपदी प्रसन्नाख्यान तथा (३) तपत्याख्यान हैं।

प्रेमानन्द के जीवन चरित्र के विषय में दन्त कथाओं पर ही आधारित रहना पड़ता है। बचपन में वे निरे मूर्ख थे। सद्‌भाग्य से किसी सत्पुरुष की सत्संगति प्राप्त हो जाने से उनकी बुद्धि विकसित हो गई और वे एक अच्छे लेखक बन गये। ज्यों ज्यों उनके आख्यान लोकप्रिय होते गये त्यों ही त्यों उनकी धन सम्पत्ति तथा जीवन की सुख-समृद्धि में अभिवृद्धि होती गई। उन्हें "भाखा" (गुजराती) के प्रति बड़ा स्वाभिमान था। उनकी शिष्य मण्डली तथा प्रशंसक-मण्डली समृद्ध थी।

प्रेमानन्द ने अच्छी आयु का उपभोग किया। उनका जन्म काल सं. १६६२ वि. तथा मृत्युकाल सं. १७६० वि. माना जाता है।

—*—

शामल
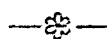
[सम्वत् १७४०–४५ से १८२५–३० वि. तक]

यथार्थ जानकारी के लिये पर्याप्त ध्यान न रक्खा जाय तो अनेक प्रकार के भ्रम दीर्घ काल तक फैले ही रहते हैं। शामल के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की भूल लम्बे समय तक चलती रही। उसे प्रेमानन्द का समकालीन माना जाता था और किंवदन्ती थी कि एक बार उसके तथा प्रेमानन्द के बीच में झगड़ा भी हो गया था किन्तु ज्यों ज्यों अध्ययन विशाल होता गया त्यों त्यों यह भ्रम भी दूर हो गया।

शामल वार्ताकार था और उसकी प्रतिष्ठा प्रेमानन्द के समान ही थी। संस्कृत की कहानियाँ, दन्तकथायें तथा लोक चर्चायें उसकी वार्ताओं का प्रमुख आधार थीं; किन्तु उन वार्ताओं को उपकथाओं तथा प्रश्नोत्तरियों के द्वारा रसमय बनाने की कला कुशलता शामल की अपनी थी।

आख्यान बहुधा शहरों में प्रचलित थे और वार्तायें गाँवों में। शामल की वार्ताओं की प्रशंसा सुनकर एक जमीनदार इतने प्रसन्न हुए कि वे उसे अपने ही साथ लिवा ले गये और अपने गाँव में ही कुछ अलग जमीन देकर उसकी आजीविका का प्रश्न ही हल कर दिया। शामल ने वार्ता लिखने की वहां पूर्ण सुविधा पाई।

प्रेमानन्द के आख्यानों की भाँति ही शामल की वार्तायें भी लोग बड़े आनन्द तथा उत्साह के साथ सुनते थे किन्तु आज के युग में उसकी वार्ताओं का लोकप्रिय होना संभव नहीं है। शामल में प्रश्नोत्तरी सजाने की चतुरता है; उसे वार्ता रस को अखण्ड प्रवाहित रखना आता है; उपकथाओं एवं उपदेशपरक चुटकुलों द्वारा श्रोताओं को रसमग्न कर देने की उसमें कला है, वार्ता पर वार्ता लिखे चले जाने की चतुराई है! इतने गुणों से युक्त होने पर भी आधुनिक युग में शामल की वार्ताओं के प्रति आकर्षण रहना संभव नहीं है। उसकी कृतियों में ग्रामीण जड़ता तथा संस्कारों में ग्रामीणता है, तथापि बोधपरक छप्पा, प्रस्तावित उपदेश, वार्ता और पात्रों के वैचित्र्य, ओज इत्यादि अनेक गुणों से वे अलंकृत हैं!

शामल की कृतियों में कई बातें ध्यान आकर्षित करने वाली हैं। मुख्यतया स्त्रियों सम्बन्धी उसके विचार अध्ययन करने योग्य

हैं। शामल की स्त्रियाँ (स्त्री पात्र) बड़ी बहादुर, साहसी, कार्य-कुशल, दृढ़हृदया तथा बलिष्ट हैं। विवाह, जाति, गृह जीवन इत्यादि अन्य विषयों पर भी शामल की कृतियां प्रचलित रीतिरिवाजों से भिन्न विचार व्यक्त करती हैं।

शामल के जीवन के सम्बन्ध में विशेष कुछ भी जानने योग्य नहीं हैं। वह जेतपुर का निवासी था। उसकी वार्ताओं से प्रसन्न होकर मातर परगने (जो नड़ियाद के पास है) के गाँव में सुंज-सिंहज के जमींदार राखीदास, ने उसे अपने ही पास बुला कर रख लिया और उसे अलग जमीन दे दी। वहीं शामल ने असंख्य वार्ताओं का प्रणयन किया है।

शामल का जन्म सं० १७४०-४५ वि० तथा अवसान सं० १८२५-३० वि० में माना जाता है।

अन्य लेखक—

सं० १६७० से १८२५-३० वि० तक के समय में अन्य भी अनेकों कवि हो गये हैं। श्रीमद् भगवद्गीता का गुजराती में पद्यमय भाषान्तर करने वाला नरहरी, नृसिंह मेहता के जीवन के सम्बन्ध में लिखने वाला विश्वनाथ जानी और गुजराति में अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले 'बारहमासा' का लेखक भावसार इसी काल में हो गये हैं।

इतिहास तथा भाषा की दृष्टि से अध्ययन करने योग्य दो पारसी कवि (१) रुस्तम तथा (२) नोशिरवान भी इसी युग की देन हैं।

वल्लभ मेवाड़ा

[सं० १७००–१८११ वि०]

शक्तिमाता के भक्त तथा 'गरबा' के लेखक के रूप में वल्लभ मेवाड़ा ने अखा-प्रेमानन्द जैसी ही ख्याति पाई है। अम्बिका की भक्ति गुजरात में प्राचीन काल से ही प्रचलित है अतः गरबा भी गाये जाते रहे होंगे। वल्लभ के गरबा इतने लोकप्रिय हुए कि उन्होंने अपने पूर्व प्रचलित सब गरबों को भुला दिया। वल्लभ के 'गरबा' में स्वर तथा ताल का जैसा सुमेल है, लय और प्रवाह में जैसे ओज और मस्ती हैं उन्हें देखते हुए यह तो नहीं कहा जा सकता कि 'गरबा' उसकी सर्वथा नवीन सृष्टि है। प्राचीन काल से ही गरबा प्रचलित होंगे। वल्लभ ने उनमें उत्साह शौर्य एवं ओज का समावेश किया; इससे उसके गरबा इतने लोकप्रिय हुए कि पूर्व प्रचलित गरबाओं को लोग भूल ही बैठे।

मातृ भक्ति के अतिरिक्त वल्लभ ने समाज के अनुचित रीति-रिवाजों पर कलियुग में होने वाली संसार की अधोदशा पर, अनमेल विवाह इत्यादि विषयों पर लिख कर टीका टिप्पणी की है। और उस काल में पैठ गई बुराइयों की ओर जनसाधारण का अच्छा ध्यान आकर्षित किया है।

वल्लभ अहमदाबाद का निवासी था किन्तु बहुचरा माताजी में अनन्य श्रद्धा होने के कारण वह 'चुंवाल' में ही रहता था। उसने लम्बी आयु का उपभोग किया है।

उसका जन्म सं० १७०० में तथा अवसान सं० १८११ वि० में हुआ था।

प्रकरण ३,—दयाराम युग.

ऐसा ज्ञात होता है मानो सं० १८२५ से १९०० वि० तक के काल में गुजरात में भक्ति और ज्ञान की अत्यधिक पिपासा जागरित हो गई हो। उस काल के कवियों और भक्तों ने उपदेश परक तथा ज्ञान-भक्ति के खूब काव्य लिखे हैं। लोगों को सद्बोध प्रदान करके उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने, जीवनानन्द तथा सुखोपभोग के अवसर देने, भगवद् भजन तथा परोपकारी कार्यों से जीवन को सफल बनाने की मंत्रणा देने के हेतु से ही लेखक प्रवृत्त हुए। इससे उन्हें बहुत प्रतिष्ठा मिली। सम्पत्ति तथा आजीविका के अनेकों साधन भी बहुतायत से प्राप्त हुए होंगे किन्तु अधिकाँश में तो आत्मतोष ही उनकी परम निधि था। इन पचहत्तर वर्षों में अनेकों कवि, भक्त, ज्ञानी अपनी अपनी प्रणाली से जगत को बोध देकर आत्मसन्तोष प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त हुए।

ऐसे लेखकों में मुख्यतः प्रीतमदास, दयाराम, धीरा और भोजा हैं।

प्रीतमदास

(सं० १७७५–८० से १८५४ वि० तक)

प्रीतमदास भाट था। वह रामानन्दी साधु हो गया था। बचपन में ही गाँव में आई रामानन्दी साधुओं की मण्डली में

जा मिला होगा। जमात के महंत ने उसको पढ़ाया और उचित ज्ञान प्रदान किया। पढ़ लिख कर वह पुनः अपने गाँव 'सन्देसर' आ गया। वहीं मन्दिर में उनसे अपना निवास स्थान बनाया और भक्ति में ही जीवन व्यतीत किया।

ग्रामीण जनता को सद्बोध देने के लिये उसने भगवद्गीता, अध्यात्म रामायण, भागवत के एकादश स्कन्ध का गुजराती में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उसने पद, भजन भी खूब बनाये। उसकी भाषा में शब्दालंकार की बहुलता है! लेखनशैली जोशीली तथा ओजमय है! रागिनी में मनोहारिणी मधुरता है! ताल एवं संगीतलय के कारण संगीत-प्रेमियों को अत्यन्त आनन्द-दायिनी है! उसके विचार उद्देशपरक होने पर भी अत्यन्त रुचिकर तथा प्रेरणापद हैं। ऐसे अनेकों सद्गुणों के कारण उसके पद अत्यन्त ही लोकप्रिय हुए हैं।

प्रीतमदास के पदों में सुविचार, उच्च प्रेरणा तथा उत्तेजक सद्बोध के साथ ही साथ अच्छा कवित्व भी है। शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों से उसकी भाषा स्वाभाविक रीति से अलंकृत हो गई है। जीवन को विशुद्ध बनाने, मन को उत्साह पूर्ण करने, सन्मार्ग के लिये आग्रह रखने तथा जीवन को सफल बनाने विषयक उसका साहित्य इतना बोधदायक तथा प्रेरक है कि शिक्षण संस्थाओं में उसकी कृतियों को स्थान देने से वे शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों के लिये अत्यन्त ही लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। "प्रीतम नी वाणी" प्रकाशित हो चुकी है।

प्रीतमदास के जन्म के सम्बन्ध में ठीक जानकारी नहीं मिलती किन्तु अपने अवसान के समय (सं॰ १८५४ वि॰ में) उनकी आयु ७०-८० साल की थी।

दयाराम

(सं० १८३३-१९०९ वि०)

प्रीतमदास की भांति ही दयाराम भी ज्ञानी, भक्त तथा कवि था किन्तु इन दोनों की प्रकृति में रात-दिन का अन्तर है। प्रीतमदास विरागी, साधु, अकिञ्चन था जब कि दयाराम संसारी एवं विलास प्रिय था। दयाराम वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसका साम्प्रदायिक ज्ञान उच्च कोटि का होने पर भी सीमित मर्यादाओं में ही विचरण करने वाला था। साहित्यिक दृष्टि से प्रीतमदास की अपेक्षा दयाराम की कृतियाँ अधिक शिष्ट तथा संस्कार शील हैं उसकी गरवियों में भिन्न भिन्न प्रसंगों की भावनाओं का ऐसा मर्म भेदी चित्रण है कि वे गुजराती साहित्य की अनमोल निधि हैं।

दयाराम चणोद का निवासी था किन्तु उसने अपना जीवन डभोई में बिताया। एक फक्कड़ और रँगीले युवक के रूप में उसने अपना जीवन प्रारंभ किया था। युवावस्था में ही उसकी काव्यशक्ति प्रस्फुटित हुई। सौभाग्य से उस समय उसे जीवराज भट्ट नामक महात्मा का सहयोग प्राप्त हो गया उन महात्मा के सदुपदेशों से दयाराम का जीवन भक्तिमय बन गया। उसका संगीत ज्ञान श्रेष्ठ था तथा गाने का वह परम प्रेमी था साथ ही साथ कवित्व शक्ति भी उसे नैसर्गिक देन के रूप में प्राप्त हुई थी। उसकी कविताओं में संगीत तथा कवित्व का अनुपम माधुर्य भरता है; इससे वे बहुत ही लोकप्रिय हैं। उसकी अनेकों गरवियों का गुजराती साहित्य की उत्कृष्टतम कृतियों में स्थान है। इसके अतिरिक्त दयाराम ने उपदेशप्रद तथा आख्यान विषयक साहित्य भी खूब लिखा है। वल्लभसम्प्रदाय के तत्त्वज्ञान पर लिखे गये उसके ग्रन्थ 'रसिक वल्लभ' का बहुत ही आदरणीय स्थान है।

दयाराम की भाषा में संस्कार भरी सरलता और प्रासादिक भावप्रवाह के साथ ही साथ संगीत-माधुर्य तथा हृदय को हिला देने वाली कोमल भावनाओं को स्पर्श करने की कुशलता है इससे उसकी कृतियाँ अत्यन्त ही चित्ताकर्षक सिद्ध हुई हैं। उसकी गणना श्रेष्ठ साहित्यकारों में होती है।

दयाराम प्रवास का परम प्रेमी था। उसने भारत के 'चारों धाम' के समस्त तीर्थ स्थानों का अनेकों बार भ्रमण किया था। भ्रमण की भाँति ही वह विभिन्न भाषायें सीखने का भी प्रेमी था। वह हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त मराठी, पंजाबी, उर्दू एवं तेलगू भी जानता था।

दयाराम का जन्म सं० १८३३ वि० में तथा अवसान सं० १९०९ वि० में हुआ था।

धीरा

(सं० १८०९–१८८१ वि०)

धीरा भाट था। वह बड़ोदा राज्यान्तर्गत 'सावली' का निवासी था। वह ज्ञानी था। वेदान्त तथा योग पर उसका अच्छा अध्ययन था। संसारियों को सत्य ज्ञान का उपदेश देने के लिये उसने 'समस्या' के रूप में अपनी कृतियों का प्रणयन किया है। 'तरणा ओथे डूंगर रे' डूंगर कोई देख नहिं (तिनके की ओट में डूंगर छिपा हुआ है किन्तु उस डूंगर को कोई देख नहीं पाता)।-इस प्रकार की अनेकों उलट बाँसियाँ धीरा की कृतियों में उपलब्ध होती हैं। उसने "काफियाँ" भी बहुत लिखी हैं।

धीरा का जन्म सं० १८०९ वि० में तथा अवसान सं० १८८१ वि० में हुआ है।

भोजा

(सं० १८४१-१९०८ वि०)

जिस प्रकार धीरा की ख्याति काफियों के कारण से है उसी प्रकार भोजा अपने चाबुकों के लिये प्रसिद्ध है। भोजा का जन्म अमरेली (काठियावाड़) के किसी गाँव में हुआ था। वह कणबी जाति का था। साधुसन्तों तथा आते-जाते महात्माओं के पास से उसने वेदान्त तथा योग का अच्छा ज्ञान सम्पादन कर लिया था। उसने विधिवत् अध्ययन किया हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। उसकी भाषा अनपढ़ ग्रामीणों जैसी है और उसने अपना जीवन भी ग्रामीणों में ही व्यतीत किया था किन्तु भक्त के रूप में प्रसिद्धि पाने वाले भोजा का जीवन भक्तिपरायण, सेवाभावी एवं परमार्थी तो रहा ही होगा।

'दुराचारी मनुष्य तो अपराधी ही हैं और उन्हें चाबुक (कोड़ों) की सजा मिलनी ही चाहिये'—ऐसा मान कर ही उसने उपदेश के पद लिखे हैं और उन्हें चाबुक की संज्ञा दी। भोजा के चाबुक अच्छा प्रचार पाये। उन्हों ने उन्मार्ग गामियों को ठीक मार्ग पर लाने, दुष्ट दुराचारियों को सुधारने तथा मोह-पंक में फँसे प्राणियों को सद्बोध प्रदान करने में अच्छा काय किया है।

इसी समय में 'रामायण, का लेखक गिरिधर, चण्डीपाठ के गरबा' लिखने वाला रणछोड़ जी दीवान, स्वामी नारायण सम्प्रदाय के निष्कुलानन्द, ब्रह्मानन्द, देवानन्द आदि साधु तथा अन्य अनेकों ज्ञान मार्गी, भक्त एवं कवि हो गये हैं। कई लेखक तो केवल एक-एक दो-दो पद लिख कर ही अमर हो गये: कारण कि उनके वे पद इतने अद्भुत एवं सत्त्वशाली हैं कि उन्होंने अपने निर्माताओं को अमरपद दे दिया है।—

रघुनाथदास, रामैया, भूखण, राधा भक्त, निरांत भक्त, गायकवाड़ सरकार बूंटिया भक्त, नरभेराम (निर्भयराम) इत्यादि उपदेश देने तथा प्रभुमय जीवन व्यतीत करने के ध्येय को अपने सनमुख रख कर स्थान-स्थान पर भजन कीर्तन करते और लोगों में धार्मिक श्रद्धा तथा पवित्र जीवन के लिये वातावरण को पवित्र बनाते थे। आज भी गाँवों में भक्तजन भजन की तान छेड़ते हैं किन्तु आज का युग बदल गया है इसलिये ऐसे भक्तों से लोग लाभ नहीं उठा पाते। हमारी जीवन-प्रणाली में परिवर्तन हो जाने से, खेद है कि, हम वैसे भक्तों का आदर नहीं कर पाते।
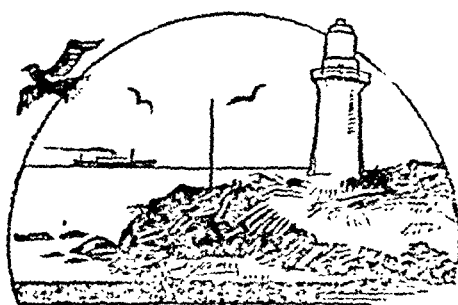
प्रकरण ४, जीवन-परिवर्तन

सन् १८०३-४ ई. से गुजरात की राजनैतिक स्थिति में भारी परिवर्तन हुए फलतः लोकजीवन पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा। भाषा तथा साहित्य पर भिन्न प्रकार का रंग चढ़ने लगा। सन् १८१८ ई. से अंग्रेजी शासन प्रारंभ हुआ। देश में अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का प्रवेश हुआ। शासक होने के नाते अंग्रेजों के प्रति पूज्य भाव और उनके आचार विचार एवं संस्कारों के प्रति भी मोह उत्पन्न हुआ। ज्यों ज्यों अंग्रेजों के साथ परिचय बढ़ता गया त्यों ही त्यों हमारे देश के महापुरुष उनके प्रशंसक व पूजक बनते गये। "नया सब कुछ अच्छा है और पुराना सब कुछ खराब व सुधारने योग्य है"—ऐसी मनोदशा होने लगी। सन् १८३०-३५ ई० से तो नये साहित्य, नये सहवास, नये मोह के कारण देश में जो जीवन-प्रवाह प्रवाहित हुआ उससे शहरों में, सम्पन्न वर्ग में, सरकारी कर्मचारियों में और जहाँ जहाँ उनकी पहुँच थी उन सब स्थानों में विदेशी का खूब प्रचार हुआ।

उस युग में लोगों को अंग्रेजी का ज्ञान तो स्वल्प ही था। केवल परोक्ष रीति से अंग्रेजों से परिचय होने लगा था किन्तु बड़े आदमियों के हृदयों में तथा उनके रीति रिवाजों, रहन-सहन के प्रति इतना मोह उत्पन्न हुआ कि वे यह समझने लगे कि अंग्रेजों के जीवन का, उनके रहन सहन का, संस्कारों का अनुकरण ही 'सुधार' है और इस प्रकार का सुधार करने एवं कराने वाले सुधारवादी कहलाये।

देश के जीवन में जो परिवर्तन हुआ तथा हो रहा था उसका प्रभाव लेखकों तथा कवियों पर भी पड़ा। पहले जहाँ जीवन को धार्मिक, संस्कार शील, पवित्र और उच्च बनाने की भावना थी वहाँ अब उसे सुधरा हुआ, उपयोगी एवं सांसारिक संस्कारों में अभिरुचि रखने वाला बनाने की भावना उत्पन्न हुई।

पुराने आचार विचारों को तिलाँजलि दे देने की सम्मति देने वाले नर्मदाशंकर करसनदास मूलजी, महीपतराम, दुर्गाराम मंछाराम आदि सुधारक गुजरात को सुधारने का अथक परिश्रम कर रहे थे। अपने भाषणों निबन्धों, कविताओं, मासिक पत्रों समाचार पत्रों द्वारा वे जनता को उपदेश देते तथा सोये हुए देश को जगाने का प्रयत्न करते थे।

ये सुधारक दो प्रकार के थे—(१) कुछ तो उग्र, अधीर तथा कठोर थे और (२) कुछ धीरे धीरे समझौते से काम लेने वाले थे नर्मदाशंकर, करसनदास, चटपट काम कर डालने वाले थे। दलपतराम, नवलराम जनता को समझाकर शान्ति से सुधार की ओर आकर्षित करने वाले थे।

बम्बई की बुद्धिवर्धक सभा तथा अहमदाबाद की गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी की स्थापना इसी काल में प्रारंभ हुई नवीन प्रवृत्तियों के सीमा चिह्न थे।

नर्मदाशंकर ने बुद्धिवर्द्धक सभा द्वारा भाषण दे कर, 'बुद्धिवर्द्धक' मासिक पत्र में तथा 'डाँडिया' नामक समाचार पत्र में लेख लिख कर, नर्मकविता के भिन्न भिन्न अंकों को प्रकाशित करके सुधार का ध्वज फहराया और प्राचीन रूढ़ियों में गहरे उतर गये देश को नया मार्ग ग्रहण करने के लिये खूब ललकारा! नर्मदाशंकर की कविता में कवित्व स्वल्प मात्रा में ही था किन्तु

उस समय की जनता इतनी शिक्षित नहीं थी इसलिये वह उसकी कविताओं के आवेश से उत्साहित होकर उसकी परम प्रशंसक बन गई और उसकी कविताओं का खूब ही प्रचार किया। नर्मद की कविताओं से जनता इतनी प्रसन्न हुई कि सूरत और बम्बई में 'कवि' एक मात्र नर्मदाशंकर ही माने जाने लगे।

नर्मदाशंकर की कविताओं में स्थायित्व न्यून ही है फिर भी उस समय वैसी कवितायें लिखने वाले बहुत कम व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त उनकी कविता में ओज तथा सुधार के उपदेश इस प्रकार के थे कि वे उस समय के अत्यन्त अनुकूल पाठ्यसामग्री प्रस्तुत कर सकीं। वह युग अल्पशिक्षित था इसलिये उनकी कवितायें अत्यन्त भावोत्पादक सिद्ध हुई और इसीलिये उस समय नर्मद 'कवि' कहे जाते थे। यद्यपि आज के युग में नर्मद का कवि के रूप में मूल्यांकन करने में अन्तर पड़ गया है किन्तु न्याय के लिये इतना तो कहना ही पड़ेगा कि वे उस युग के आग्रही, उत्साही और अविश्रान्त कार्यकर्त्ता के रूप में तो सदैव ही सन्माननीय एवं पूज्य गिने जायेंगे। अनेकों विषयों में नर्मदाशंकर पहले अग्रणी थे यह वस्तुस्थिति अन्यथा नहीं हो सकती।

नर्मदाशंकर पहले गद्यलेखक हैं, विश्व-इतिहास गुजराती में लिपिबद्ध करने वाले भी वे पहले ही हैं। वे प्रथम गुजराती-कोपकार हैं। गुजराती में नवजीवन का बिगुल बजाने वाले भी वे पहले ही हैं। सुधार सम्बन्धी उनके विचारों में परिवर्तन होने पर उसके विरुद्ध अपना विरोध प्रदर्शित करने का साहस दिखाकर निर्भयता एवं प्रमाणिकता का विरल दृष्टान्त उपस्थित करने वाले भी वे पहले ही व्यक्ति हैं।

नर्मदाशंकर शूरवीर आग्रही, टेक वाले, स्पष्टवक्ता तथा निर्भय व्यक्ति थे। किन्तु उनमें दीर्घ दृष्टि, कुशाग्र बुद्धि या गंभीर

विचार करने की शक्ति अत्यल्प थे। उनका वाचन विशाल था किन्तु विवेकदृष्टि स्थूल ही रह गई थी। तत्काल जो स्फुरणा होती उसे ही वे सत्य मान बैठते थे और उसी के अनुसार आचरण करने को व्याकुल हो उठते थे।

जिस भाँति वे प्राचीन विचार वालों के दंभ, ढोंग और दुराचरण से क्रोधित हुए वैसे ही नवीन सुधारकों की दुष्टता एवं बुराइयों को देख कर भी उबल उठे तथा उनका उत्कट विरोध करके वे प्राचीनता के प्रशंसक और पूजक बन बैठे। उनका यह विचार-परिवर्तन प्रमाणित था किन्तु जैसे उन्होंने पहले प्राचीनता वादियों के प्रति तुरन्त ही विरोध प्रकट किया था उसी प्रकार इस बार सुधारवादियों के प्रति भी विरोध प्रकट करने में उन्होंने बहुत शीघ्रता की। नर्मदाशंकर शान्ति से, गंभीरता पूर्वक, दीर्घ दृष्टि से विचार कर सकने की सूक्ष्म बुद्धि या तीव्र धारणाशक्ति से वंचित ही थे। वे प्रामाणिक थे, साहसी थे, निडर थे, जोशीले थे; किन्तु गहन विचारशक्ति, भविष्य दर्शन की तीक्ष्ण दृष्टि तथा गहन शान्ति के अभाव में उनका जीवन आवेशों के वशवर्त्ती बन जाता था। कुछ नवीन कर दिखाने का उनका आवेश बड़ा भारी था। भिन्न भिन्न प्रकार की कविता लिखने वाले वे लगभग पहले ही कवि थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है,–वे पहले कोषकार, गद्यकार, इतिहासकार, जीवनचरित्र कार तथा निबन्धकार थे। वे अत्यन्त आग्रही, उद्योगी तथा अथक परिश्रमी थे। गुजरात में नवजीवन का संचार करने वाले कार्यकर्त्ताओं में वे प्रमुख थे। वे "जय जय गरवी गुजरात" की भावना जगाने वाले थे। वास्तव में वे एक महान गुजराती थे।

उनकी कविताओं में 'शूरवीर नों लक्षण' वीर रस कविता, हिन्दुओं नी पड़ती, सूरत नी हकीकत इत्यादि कुछ ही कृतियां

स्थायी रह सकेंगी। गद्यलेखों में 'गुजरातीओं नी स्थिति', कतिपय अन्य निबन्ध तथा 'धर्म विचार' अध्ययन करने योग्य हैं। नर्मकथा-कोष जिसमें पुराणोक्त तथा अन्य पात्रों का परिचय दिया गया है, अपने ढंग का अद्वितीय ग्रन्थ है, नर्मद की इस प्रकार की सेवाओं को गुजरात कभी भी विस्मरण नहीं कर सकेगी।

नर्मद के समकालीन सुधारकों में मुख्य करसनदास मूलजी, महीपतराम रूपराम जी तथा दुर्गाराम मंछाराम जी की गणना की जाती है। करसनदास तथा महीपतराम तो विलायत जाने वाले पहले व्यक्ति थे। जाति बन्धुओं का विरोध होने पर भी उन्होंने परदेश गमन किया था इसके अतिरिक्त सुधार के अन्य कार्यों में भी वे अभिरुचि रखते थे। मुख्यतया करसनदास मूलजी "लायबल केस" से अमर हुए। वल्लभ सम्प्रदाय में पैठ गई बुराइयों के विरुद्ध करसनदास ने खुले आम टीका की। वैष्णव गुसाइयों ने करसनदास की बातों को झूठी बतलाते हुए उन पर मानहानि का दावा कर दिया। इस केस (मुकद्दमे) में गवाही देने के लिये जातीय जनों की ओर से बहुत से लोगों को तंग किया जाता था फिर भी कुछ दृढ़ निश्चयी पुरुषों की निर्भयता के कारण केस सांगोपांग चला। इस केस की सम्पूर्ण जानकारी से भरपूर पुस्तक "लायबल केस" प्रकट की गई। साहित्य के साथ इस मुकद्दमे का कोई सम्बन्ध न होने पर भी समाज के साथ अवश्य है। इसलिये विद्यार्थियों को चाहिये कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ लें।

करसनदासजी ने सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। गार्हस्थ्योपयोगी दो-तीन पुस्तकें लिखी हैं। उनकी इङ्गलैण्ड प्रवास की पुस्तक विशेष ध्यानाकर्षक है। वे विलायत जाने वाले पहले गुजराती थे। इसलिये उनकी पुस्तक में दी हुई जानकारी से गुजरात को पर्याप्त लाभ हुआ।

महिपतरामजी भी सुधारवादी थे। वे स्थिर वृत्ति के एक-मार्गी कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने भी अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। 'सधरा जैसंग,' 'वनराज चावड़ो,' 'सासू वहू की लड़ाई' उस समय खूब पढ़ी जाती थीं। 'भवाई-संग्रह' भी अत्यन्त उपयोगी सूचनाओं से भरपूर पुस्तक है।

इनके समान ही अन्य सुधारवादी भी हो गये हैं। उनकी कार्य-पद्धति में भेद होने पर भी उद्देश एक ही था। दलपतराम तथा नवलराम शान्त सुधारवादियों में श्रेष्ठ थे। 'हुन्नरखान नी चढ़ाई', वेनचरित्र, तथा बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी गरबियों में दिया गया दलपतराम का उपदेश-ज्ञान बहुमूल्य है। उनका व्यवहारिक ज्ञान बहुत विशाल था किन्तु कवित्व तथा बुद्धिशक्ति सामान्य कोटि की होने के कारण उनकी कृतियाँ सरल, सद्बोध-पूर्ण तथा मनोरंजक होने पर भी उच्च कवित्वपूर्ण या उच्च कोटि के साहित्य में स्थान पा सकने योग्य नहीं हैं। साधारण ज्ञानी के लिये तो वे अत्यन्त रोचक हैं। 'फारबस विलास, विजयक्षमा, हंसकाव्यशतक, ममार बावनी, सम्पलक्ष्मी, अंग उधार नो झगड़ो आदि कविताओं के रसिक पाठक बहुत मिल जायेंगे।

दलपतराम ने समाजसुधार तथा स्त्री शिक्षा के लिये रात दिन अथक परिश्रम किया है। आज के युग में उसका मूल्यांकन करने वाले विरल ही हैं यह बड़े खेद की बात है।

दलपतराम अंग्रेजी नहीं पढ़े थे फिर भी फारबस साहब के साहचर्य से उन्होंने अंग्रेजी संस्कारों की अच्छी जानकारी प्राप्त करली थी। वे अंग्रेजों तथा अंग्रेजी शासन के सच्चे प्रशंसक थे। वह समय ही ऐसा था। अंग्रेजी शासन के प्रारंभ होते ही जो शांति एवं सुव्यवस्था जनता को प्राप्त हुई उससे अंग्रेजों के प्रति

प्रेम व पूज्यभाव बढ़ता गया। दलपतराम की मान्यता थी कि ऐसे अंग्रेजी शासन में प्रत्येक व्यक्ति को देश में ज्ञान, सम्पति एवं एकता का प्रचार करने का शक्य प्रयत्न करना चाहिये। वे स्वयं ऐसा करते थे। गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी का कार्य संचालन करने के लिये किसी योग्य व्यक्ति की आवश्यकता पड़ने पर फारबस साहब ने उनसे कहा। उस समय वे सरकारी कर्मचारी थे। उन्होंने वेतनवृद्धि, पैंशन, लोकसन्मान इत्यादि सब को तिलांजलि देकर तुरन्त सरकारी नौकरी छोड़ दी और सोसाइटी जैसी व्यक्तिगत संस्था में कार्य करने लग गये। देश सेवा तथा साहित्यसेवा के लिये ऐसा अनुपम त्याग करने वाले विरले ही होते हैं। दलपतराम जी की इस प्रकार की मूक सेवाओं का सन्मान गुजरात नहीं कर सकी, यह उसका अभाग्य ही है।

दलपत व नर्मद की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान अधिक अध्ययन-शील एवं अधिक गम्भीर विचारक होने पर भी शान्त व मूक सेवक होने के कारण नवलराम उस समय अधिक आगे नहीं आ सके। यदि सुधारवादी दृष्टि से देखें तो नवलराम का सहयोग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्राचीन रीति रिवाजों के प्रति उनकी अरुचि "बाललग्नबत्रीसी" तथा "गरबावली" की किसी किसी गरबी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। दुर्गाराम जी मेहता तथा करसनदास मूलजी के जीवनचरित्र की आलोचना करते हुए हम उनकी सुधारक मनोदशा तथा सुधार के प्रति उनके विश्वास को स्पष्ट देख सकते हैं। नर्मद के विचार-परिवर्तन की आलोचना करते हुए नवलराम ने स्पष्ट लिखा है कि "सुधार मर नहीं गया है, न मरने ही वाला है। देश में ज्यों ज्यों शिक्षा की अभिवृद्धि होती जायगी त्यों ही त्यों सुधार भी प्रगतिगामी होता ही रहेगा।" नवलराम की यह भविष्यवाणी कितनी सफल सिद्ध हुई है, आज का युग इसकी साक्षि दे रहा है।

नवलराम ने कवितायें बहुत कम लिखी हैं। ऊपर जिन कविताओं का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त उन्होंने मेघदूत का भाषान्तर किया है। उस भाषान्तर की ओर विद्वानों का दुर्लक्ष्य क्यों है, यह समझ में नहीं आता। नवलराम ने कालीदास के भाव को मेघ छन्द में सुन्दर रीति से व्यक्त कर दिया है। प्रत्येक पाठक यह स्वीकार करता है कि भाषांतर विस्मरणीय नहीं है। नवलराम की कविता परिमाण में कम होने पर भी उनकी कृतियों में कवित्व है, सुविचार है, सद्बोध है।

नर्मद के गद्य की अपेक्षा नवलराम का गद्य अधिक संस्कारशील, अधिक भाववाही, अधिक अर्थघन तथा अधिक रसभरित है। उनके सम्पूर्ण लेखों का संग्रह अब उपलब्ध नहीं है यह शोक की बात है। उनके ग्रन्थावलोकन साहित्य के विद्यार्थियों के लिये मार्गदर्शक हैं। वे गुजराती के पहले अवलोकनकार के नाते अत्यन्त सम्माननीय हैं। प्राचीन नवलग्रन्थावली में संग्रहीत उनके लेख उपयोगी जानकारी से भरपूर हैं। साधारण पाठक को उनसे आनन्द तथा बोध मिलते हैं।

उनके शिक्षा सम्बन्धी लेख हाल में भुला दिये गये हैं। ऐसा लगता है मानो आज की नवीन प्रगति के प्रशंसक नवीन पुस्तकों की खोज में, नवलराम के लेखों को पुराने मान कर उनके सामने तक नहीं देखते। सच पूछा जाय तो शिक्षकों के लिये तथा शिक्षकों के निर्माताओं,—ट्रेनिंग कॉलेज के कार्यकर्त्ताओं के लिये आज भी नवलराम के लेख प्रेरक तथा बोधदायक होने की क्षमता रखते हैं। प्राचीन नवलग्रन्थावली भाग ३ में उनके शिक्षा सम्बन्धी लेखों को संग्रहीत किया गया है। नवलराम के नाटकों के सम्बन्ध में इसी प्रारंभिका के नवें प्रकरण में लिखा गया है।

नवलराम जैसे संस्कारशील, सुश्रुत तथा विवेकशील दृष्टि वाले विद्वान का अध्ययन अधिकाधिक हो यह वांछनीय है।

इन तीन प्रमुख लेखकों के अतिरिक्त अन्य अनेकों विद्वान तथा कार्यकर्त्ता लोकोपयोगी साहित्य प्रकाशित करके अच्छी साहित्य सेवा कर गये हैं। उनमें से रणछोड़भाई, उदयराम, हरगोविन्ददास काँटा-वाला, व्रजलाल कालिदास शास्त्री व इच्छाराम, सूर्यराम, देसाई, प्रमुख व्यक्ति हैं। रणछोड़रामजी ने कविता लिखी है, नाटक लिखे हैं, फुटकर लेख लिखे हैं। उनका उद्योग साहित्यप्रेम अद्भुत थे, अपूर्व थे! उनकी पुस्तकों में रणपिंगल तथा विश्व के विभिन्न देशों के व्यापारों का परिचय देने वाली पुस्तकें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

हरगोविन्ददास काँटा वाला ने 'पानीपत' तथा, 'विश्वनी विचित्रता' ये दो लघु काव्य लिखे हैं; कहानियाँ लिखी हैं। सामान्य ज्ञान (जनरल-नॉलिज) की अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं। उनका उद्यम अत्यन्त प्रशंसनीय है। उन्होंने प्राचीन काव्यों को प्रकाशित करके बहुमूल्य सेवा की है। उन्होंने प्रारंभ में त्रैमासिकों में और तत्पश्चात गायकवाड़ सरकार के आश्रय में प्राचीन काव्यमाला निकाल कर प्राचीन कवियों को प्रकाश में लाने का अथक परिश्रम किया है। इच्छाराम, सूर्यराम देसाई ने 'बृहत्काव्य दोहन' के प्रकाशन द्वारा सुन्दर साहित्य सेवा की है। यद्यपि इन दोनों के प्रकाशन-कार्य में आज हमें अनेको त्रुटियाँ दिखाई देती हैं किन्तु जिस समय में उन्होंने यह कार्य किया है वह वास्तव में सराहनीय है। समय की प्रगति के अनुसार नवीन अनुसन्धान होते रहते हैं यह ठीक है किन्तु भूतकालीन सेवाओं श्रम एवं उत्साह का भी विस्मरण तो नहीं होना चाहिये।

व्रजलाल, कालिदास शास्त्री संस्कृत के प्रखर विद्वान थे। वे

मागधी के ज्ञाता भी थे। वे गुजराती भाषा के वंशावतार तथा गुजराती भाषा के व्याकरण के अध्ययन के लिये कठिन परिश्रम करने वाले थे। उनकी लिखी हुई दो पुस्तकें- (१) गुजराती भाषा नो इतिहास तथा (२) उत्सर्गमाला छोटी होने पर भी बहुमूल्य हैं।

इसके अतिरिक्त इस युग में अनेकों नवीन प्रवृत्तियाँ हुई हैं। अनेकों लेखकों ने काव्य, कहानियाँ व अनेकों लेख लिखे हैं। उनमें से अनेकों ध्यान देने योग्य हैं किन्तु प्रारंभिका में मात्र बाह्य परिचय दिया गया है, अधिक जानकारी नहीं दी गई। फिर भी यहाँ 'करणघेलो' की चर्चा करना आवश्यक है। इसके लेखक नन्दशंकर, तुलजाशंकरजी हैं। यह पुस्तक सर्व प्रथम सन् १८६६ ई. में प्रकट हुई थी। उस युग की मान्यताओं के अनुसार प्रथम आवृत्ति में भूतप्रेत की बातें लिखी गई थीं किन्तु बाद में उसमें सुधार कर दिया। कुछ ऐतिहासिक सत्य का आधार लेकर तत्कालीन समाज रचना, जनता की धार्मिक, राजकीय एवं सांसारिक मनोदशा एवं लोक में प्रचलित भले बुरे रीति रिवाजों का प्रभावशाली भाषा में परिचय देती हुई यह पुस्तक बहुत ही अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई। जनता का मनोरंजन करने वाली उपकथाओं, स्थलों तथा प्रसंगों के मनोहर वर्णनों एवं अनेकों छोटी-बड़ी जानकारियों के कारण करणघेला बहुत समय तक लोकप्रिय रहा। विद्यार्थियों के लिये शालोपयोगी संस्करण प्रकाशित करके उसकी उपयोगिता में खूब ही वृद्धि की गई। अब तक इस पुस्तक का अत्यधिक सम्मान हुआ, किन्तु अब समय परिवर्तित हो गया है तथा जनता की मनोदशा व ज्ञान में भी भारी परिवर्तन हो गया है, अतः करणघेला की वैसी ही कीर्ति स्थिर रह सकना कठिन जान पड़ता है। फिर भी गुजराती के प्रथम सुन्दर उपन्यास के रूप में वह सदैव सम्मान एवं सद्भावना के साथ चिरस्मरणीय रहेगा।

प्रकरण ५

अंग्रेजी शिक्षा के प्रथम फल

सन् १८५७ ई० में बम्बई यूनीवर्सिटी की स्थापना हुई। इसके पहले अंग्रेजी पढ़ने की थोड़ी बहुत सुविधा थी किन्तु विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् सारे देश में अंग्रेजी के अध्ययन की ओर अत्यन्त आकर्षण उत्पन्न हो गया। उस समय अंग्रेजी पढ़ने वालों को सरकारी कर्मचारियों में उच्च स्थान प्राप्त होता था; लोक में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी; अतः इस ओर स्वभावतया ही मोह उत्पन्न हो गया। नवीन शिक्षा पाने वालों का मानस अंग्रेजी के प्रति पक्षपातपूर्ण तथा अंग्रेजों के प्रति सन्मान पूर्ण दृष्टि से देखने वाला बन जाता था।

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व देश में साधारण ज्ञान के प्रचार तथा उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिये कोई सुविधा नहीं थी। संस्कृत के शास्त्री तथा पण्डित अथवा वैद्यक या ज्योतिष के अभ्यासी अपने लिये उपयोगी ज्ञान का स्वतः उपार्जन करते थे। अधिकांश में ब्राह्मण ही शिक्षा ग्रहण करते थे; इतर जनता तो व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा ही अनुभव प्राप्त कर लेती थी। यह अनुभव उसे पुराणों की कथाओं, माणभट्टों तथा लोककथाओं के द्वारा मिलता था। उस समय सबको आकर्षित करने वाली शिक्षापद्धति का सर्वथा अभाव था। इसके विपरित, ब्राह्मण जो थोड़ा बहुत ज्ञान अर्जित करते थे उससे वे एकमार्गी तथा अभिमानी बन जाते थे।

मूर्ख ब्राह्मण भी अपने ज्ञानाभिमान का दावा कर बैठता था। परिणाम स्वरूप, देश में एक ओर ज्ञानशून्यता तथा दूसरी ओर जातीय अभिमान वृद्धि पाते गये। दम्भ, ढोंग, वहम तथा मिथ्याभिमान बढ़ जाने से सांसारिक जीवन आदर्श शून्य तथा ध्येयविहीन बन गया। सभी कूपमंडूक बने हुए एकरंगा जीवन में निमग्न रहते थे। यदि कोई उसमें से आगे-पीछे हटने की चेष्टा करता तो उसकी ओर घृणा तथा तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था।

ऐसे समय में अंग्रेज शासक बन कर आये। सारे देश वासी नवीन शासन के अधीन हो गये। इतना ही नहीं, अंग्रेजी पढ़ पढ़ कर निकलने वाले व्यक्ति अंग्रेजों के प्रभाव से इतने प्रभावित हुए, ऐसे मोह में फँस गये, ऐसे पामर बन गये कि वे उनके प्रशंसक ही नहीं अपितु पूजक बन गये, -मानो उनके दासानुदास ही न हों !

जनता को प्रसन्न रख कर उसके हार्द को जीत लेने की कला में अंग्रेज परम प्रवीण थे। सारे देश में इस प्रकार का मत बँध गया था कि प्राचीन शासन पद्धति की अपेक्षा अंग्रेजों की शासन पद्धति ऐसी अनोखी है जिससे जनता को बहुत ही अधिक सुख व शान्ति प्राप्त होते हैं।

ऐसे वातावरण में अँग्रेजों ने ऐसी शिक्षा पद्धति जारी की जिससे सभी मनुष्य समान रूप से लाभ उठा सकें। उच्च शिक्षा देने के लिये विश्वविद्यालय की स्थापना कीगई। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का माध्यम अंग्रेजी ही था अतः अंग्रेजी का अध्ययन विस्तृत हुआ और अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्ति अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी रीति रिवाजों के प्रशंसक बनने लगे। समग्र देश का

वातावरण अंग्रेजी भाषा, वेशभूषा, रीतिरिवाज को अनुकरणीय एवं उपादेय तथा स्वदेश की सम्पूर्ण वस्तुओं को जंगली, तुच्छ, निर्माल्य तथा हेय समझने लगा !

लोक समुदाय की ऐसी मनोदशा को उचित न मानने वाले भी कोई व्यक्ति निकल आते थे। सौभाग्य से विश्वविद्यालय की शिक्षा में संस्कृत को भी स्थान होने से उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को उसका भी अध्ययन करना पड़ता था। इस अध्ययन का लाभ यह हुआ कि किन्हीं किन्हीं कुशाग्रबुद्धि अध्ययन कर्त्ताओं को सत्यदर्शन होने लगा। संस्कृत के अध्ययन से उन्हें यह अनुभव हुआ कि देश में प्रचलित रीति रिवाजों, आचार विचारों, आहार विहार के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करने वाले, सुधारवादियों के द्वारा प्रसारित वातावरण को बदलना चाहिये। वे यह भली-भाँति समझ गये कि हमारे रीति रिवाज तथा आचार विचार सर्वथा अर्थशून्य व निरे मूर्खतापूर्ण नहीं हैं। इनके पीछे भी कोई उच्च ध्येय सन्निहित है।

नवीन शिक्षा पाने वाले युवकों की मनोदशा ही ऐसी हो जाती थी कि उनमें से अधिकांश व्यक्ति प्राचीनता के निन्दक बन जाते थे। जनसमाज प्राचीन रीतिरिवाजों के प्रति श्रद्धालु था अतः नव शिक्षितों ने उस पर नवीन (अंग्रेजी) सभ्यता लादने का प्रयत्न किया। किन्तु सद्भाग्य से उन नवशिक्षितों में से कोई विचारशील पण्डित प्राचीन-अर्वाचीन की तुलना करने वाला भी निकल आता था। गोवर्द्धनराम, माधवराम त्रिपाठी (सन् १८५५-१९०७ ई.) ऐसे ही एक विद्वान चिन्तक थे। उन्हों ने देश में व्याप्त सुधारवादी विचारों की सारासारता जनता के सन्मुख प्रस्तुत की और प्राचीनता-अर्वाचीनता के दृष्टान्तों द्वारा जनता को यह समझाया कि उसे किस पथ पर अग्रसर होना चाहिये ?

नवशिक्षितों में से कुछ व्यक्ति पुरातनता के ऐसे भक्त थे कि वे एकमात्र प्राचीन वस्तु को ही ठीक मान कर 'पुराणप्रेमी' बन बैठे थे। मणीलाल नथुभाई द्विवेदी (सन् १८५८-१८९८ ई.) अच्छे संस्कृतज्ञ थे। उन्होंने यूनीवर्सिटी में ही इसका ज्ञान प्राप्त किया था फिर भी वे नवीन सभ्यता के सर्वथा विरुद्ध थे। इसके विपरीत नरसिंहराव भोलानाथ (सन् १८५९—१९३७ ई०) तथा रमणभाई महीपतराम (सन् १८६८— १९२८ ई) नवीन विचारधारा के ग्रहणकर्त्ता तथा नवीन सभ्यता का आचरण करने वाले थे। शिक्षा पाकर उच्च पदवी प्राप्त करने वाले ऐसे व्यक्तियों का जनता पर अधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। मनुष्य मात्र तत्काल ही नवीनता के मोहजाल में फँस जाता है। बहुत से व्यक्ति अंग्रेजों के अनुकरण-प्रिय बन गये थे और बहुत से, प्राचीन बन्धनों से मुक्ति पाने के बहाने स्वच्छन्द हो गये थे। गोवर्द्धनराम जैसे विचारक इस वातावरण से अत्यधिक चिन्तनशील बन गये। उन्होंने अपने सरस्वतीचन्द्र नामक उपन्यास के द्वारा गुजरात को यह बताया कि प्राचीन परम्पराओं में घर कर गये अनर्थों को समझ कर उन्हें दूर करने की परमावश्यकता है। उन्होंने यह भी बताया कि शिक्षित व्यक्ति भी कभी कभी कैसी शीघ्रता कर बैठते हैं और देशोद्धार के निमित्त कैसे कैसे आदर्शों की आवश्यकता है ?

सरस्वतीचन्द्र का पहला भाग सन् १८८७ ई. में प्रकाशित हुआ। उसका ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ा मानो गुजरात में नव चेतना ही न आ गई हो ! सरस्वतीचन्द्र केवल उपन्यास ही नहीं, वह समाज के लिये चिन्तन करने वाले गंभीर विचारक की मनो-दशा का चित्र है। "प्राचीन परम्पराओं में भी कितनी अच्छाइयाँ हैं और उनके अन्धानुकरण से भी सामाजिक बन्धन कैसे शुभ परिणामी हो जाते हैं; राजाओं, पूँजीपतियों, विद्वानों तथा साधु-

सन्तों के लिये कितने उच्च आदर्श कल्पित किये गये हैं; जगत में पग पग पर फैली हुई दुष्टता को पहचान कर, उससे सचेत रह कर उसका सामना करने के लिये कितनी सावधानी रखने की आवश्यकता है" इत्यादि अनेक विषयों की चर्चा सरस्वतीचन्द्र में की गई है। वह विद्वत्तापूर्ण होने के साथ ही साथ मार्ग दर्शक तथा उच्च प्रेरणादायक है। उक्त उपन्यास अनेक इतर विषयों से परिपूर्ण होने पर भी कथा-रस को आद्योपान्त स्थिर रखता है। कुछ व्यक्तियों को इसके तीसरे भाग की संस्कृत तथा चतुर्थ भाग की चिन्तनशील चर्चा कथा रस में विघ्नकारक लगती है। उपन्यास के स्वरूप तथा कथा-रस के रसिकों के लिये ये बाधक सिद्ध हो सकती हैं किन्तु इससे सरस्वतीचन्द्र के गुणों में कोई बाधा नहीं आ सकती। गोवर्द्धनराम ने गुजरात के चिन्तनशील वर्ग के आगे गुजरात के जीवन की भिन्न भिन्न रूपरेखायें खींच कर, भविष्य की ओर दृष्टिपात करके समस्त गुजरात में जो उत्साह, जो प्रेरणा, जो आनन्द प्रसारित किये हैं वे वास्तव में अत्यन्त ही प्रशंसनीय हैं।

साहित्य के द्वारा लोक समुदाय को शिक्षित तथा अधिक बुद्धिशाली बनाने पर भी वाचन के मोह को स्थिर रखने में सरस्वतीचन्द्र परम यशस्वी सिद्ध हुआ है। निःसंशय गुजराती साहित्य में यह उपन्यास अनुपम अद्वितीय एवं विशिष्ट कोटि के ग्रन्थ के रूप में सदैव सम्माननीय रहेगा।

सरस्वतीचन्द्र की मूल कथा अति संक्षिप्त है। एक लक्षाधीश सेठ का प्रतिभाशाली पुत्र विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् देश तथा देशवासियों के विषय में विचार करने लगता है। वह सोचता है कि अपनी सम्पत्ति का विनियोग देश की दुखी जनता में कैसे किया जाय? देश सेवा का कार्य करने के हेतु एकाकी

जीवन को ही श्रेष्ठ मान कर वह विवाह करने के लिये तैयार नहीं होता।

अकस्मात एक सुशील कुमारिका से उसका परिचय हो जाता है और स्वाभाविक आकर्षण के वशीभूत होकर वह उससे विवाह करने को तत्पर हो जाता है और सोचने लगता है कि विवाह के पश्चात भी देश सेवा के कार्य में कोई बाधा नहीं आयेगी। किन्तु स्त्रियों की निरर्थक आलोचनाओं से मर्माहत हो कर एक भावुक नवयुवक की भाँति वह अपने विचार बदल देता है और विवाह करने के विचार को तिलांजलि दे देता है। एक अनजान मनुष्य की भाँति रह कर संसार का अनुभव प्राप्त करने के लिये वह अपने घर को भी छोड़ देता है। उसने देशी राज्यों, भले बुरे परिवारों, गरीब मनुष्यों, साधु सन्यासियों तथा ग्रामीणों का कुछ अनुभव प्राप्त किया और देश, के भविष्य के लिये अनेकों योजनायें बनाईं किन्तु अन्त में अपने अनुभवों के द्वारा वह यह भली भाँति समझ गया कि गरीब बन कर इधर उधर भटकते फिरने से निर्धारित देश सेवा-कार्य पूरा नहीं हो सकेगा। अतः उसने पुनः माता-पिता के साथ रहने का निश्चय किया। अपना विवाह करके उसने 'कल्याण-ग्राम' की स्थापना की और उसमें अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करने की ओर प्रवृत्त हुआ।

सरस्वतीचन्द्र में कथानक केवल इतना ही है किन्तु उसमें कथा-रस को स्थिर रखने की कला है। उसकी भाषा नवीन ही रूप लेकर अवतरित हुई है। उसके वर्णन, विचार तथा घटनायें कलाकार की तूलिका से चित्रित हुए हैं। उसकी शैली इतनी मनोरंजक एवं चित्ताकर्षक है कि पग पग पर कवित्व की झलक दिखाई पड़ती है। संसार के विविध दृश्यों, सुख-दुःखों, भले बुरे प्रसंगों, गुजरात के गार्हस्थ्यजीवन, राजनैतिक उथल पुथल, ज्ञान

चर्चा इत्यादि अनेक विषयों को स्पर्श करती हुई उनकी कृति पाठकों को आनन्द प्रदान करके ऊँचा उठाने वाली है। किसी समय वार्तालाप में पाण्डित्य की झलक आ जाती है, किसी समय घटनाओं में मर्यादा का उल्लंघन दृष्टिगत होता है और किसी समय गगन विहारी कल्पनायें अति पर पहुँच जाने के कारण असंभव-सी प्रतीत होने लगती हैं, फिर भी श्रद्धापूर्वक अध्ययन की दृष्टि से पढ़ने पर वह पुस्तक जीवन को नवीन ही रंग में रंग डालने में परम समर्थ है। वह गंभीरता से घोषणा कर रही है कि गोवर्द्धनराम कथाकार, गंभीर विचारक तथा चिन्तनप्रेरक होने के साथ ही साथ उच्च कोटि के कवि तथा महान समाज-सुधारक भी थे।

सरस्वतीचन्द्र के अतिरिक्त भी गोवर्द्धनराम ने बहुत कुछ लिखा है। 'लीलावती नी जीवनकला' तथा 'दयाराम नो अक्षरदेह' जीवन चरित्र होने पर भी इन दोनों पुस्तकों के द्वारा गार्हस्थ्य जीवन तथा कविजीवन के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे मननीय हैं, पाठक के जीवन पर अमिट प्रभाव डालने वाले हैं। 'साक्षर जीवन' तथा 'स्नेहमुद्रा' की गणना गुजराती साहित्य की सर्वोत्तम कृतियों में की जाती है 'स्नेहमुद्रा' काव्य है। इसमें भी देशोद्धार, तत्त्वचिन्तन तथा सृष्ट पदार्थों के रहस्यदर्शन का इतना गंभीर एवं उत्कृष्ट वर्णन है कि उसकी समता करने वाली अन्य पुस्तक आज तक गुजरात को नहीं मिली है। 'स्नेहमुद्रा' में आये प्रकृतिवर्णन, तत्त्वचिन्तन, देश प्रेम, दाम्पत्यप्रेम इत्यादि के आलेखन में सुन्दर कवित्व तथा उदात्त भावों की उच्चता का जो अनुभव होता है वह अत्यन्त ही विरल है।

'साक्षर जीवन' गुजराती के उत्तमोत्तम ग्रन्थों में अग्र पंक्ति पर सुशोभित होता है। "शिक्षा क्या है? सच्चे साहित्यकार कैसे

होते हैं ? साहित्यकारों से विश्व कैसी उच्च आशायें रखता है ? साहित्यकार ही सच्चे देशहितचिन्तक तथा देशोद्धारक हैं"- इन बातों को पूर्व तथा पश्चिम के महापुरुषों के दृष्टान्तों के द्वारा समझाया है। दुर्भाग्य से, साहित्यकारों का कर्तव्य समझाने तथा उनका सच्चा मूल्यांकन करने वाली यह पुस्तक अधूरी ही रह गई। विद्वद्वर्ग यदि ऐसी पुस्तक की, अधूरी समझ कर उपेक्षा कर बैठेगा तो गुजराती में श्रेष्ठ पुस्तकों को प्रोत्साहन कैसे मिलेगा ?

इनके अतिरिक्त भी गोवर्द्धनराम ने बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने गुजराती कवियों का परिचय दिया है, समकालीन चर्चा को उठा कर अंग्रेजी तथा गुजराती में अनेकों लेख लिखे हैं। इससे भी अधिक स्मरणीय बात तो यह है कि वे केवल कलम के धनी ही नहीं थे अपितु जीवन के उच्चादर्शों का अनुसरण करने वाले भी थे। विश्वविद्यालय की शिक्षा पाकर बाहर आने वाले विद्वानों में वे प्रथम श्रेणी के चिन्तनशील, उच्चतम समाज-सेवक, लोकप्रिय एवं लोकोपकारक साहित्यकार, कवित्वपूर्ण सहृदय तथा उत्कृष्ट प्रतिभाशाली साधु पुरुष थे। वे साहित्यगगन में ध्रुव तारक की भाँति सदैव अचल एवं निर्मल प्रकाश से प्रकाशित रहेंगे।

विद्यालय से बाहर आने वाले अन्य विद्वान भी गोवर्द्धनराम के ही सहकर्मी साहित्यसेवक थे। मणिलाल नभुभाई, नरसिंहराव भोलानाथ, केशवलाल हर्षदराय ध्रुव (सन् १८५६-१९३७ ई०) तथा रमणभाई महीपतराम इस युग के साहित्य महारथी हैं। इनमें से प्रत्येक का क्षेत्र भिन्न होने पर भी, गुजराती साहित्य को समृद्ध करने में प्रत्येक का भाग महान है।

मणिलाल नभुभाई,

मणिलाल प्राचीनता-प्रेमी थे। सुधारवादी आचार-विचार उन्हें आकर्षित नहीं कर सके थे, अपितु उन्हें तो वे सब दोष पूर्ण, उन्मार्गगामी तथा अनर्थकारी लगते थे इसीलिये प्राचीन आचारों को पालन करने का उन्होंने खूब उपदेश दिया है। उन्होंने प्राचीन आचारों का रहस्य समझाने के लिये अनेकों लेख लिखे तथा नारीप्रतिष्ठा, बालविलास इत्यादि पुस्तकें लिख कर सत्यदर्शन के लिये गुजरात को खूब प्रेरणायें दी हैं। मणिलाल तत्त्वज्ञानी थे। शांकरमत के रहस्यदर्शक के रूप में उन्होंने विदेश में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वेदान्त के तत्त्वज्ञान को सूफी मत का रंग देकर उन्होंने अनेकों सुन्दर कवितायें लिखी हैं। 'प्रेम जीवन' तथा 'अभेदोर्मि' काव्य ग्रन्थों पर तत्त्वज्ञानदर्शक टीका मणिलाल ने स्वयं लिखी है। इन दोनों काव्य संग्रहों की कविताओं में अन्य फुटकर रचनायें और सम्मिलित करके "आत्मनिमज्जन" नामक काव्यसंग्रह प्रकाशित किया है। "प्रीति-प्रेम वन्दुँ जय जय वाणी, अमे तो वैरागी प्रेम नी झलक छाई रे, आँख भर्ये शुँ थाय ?, उड़ी जा तुँ गाफेल गाभरा," इत्यादि कविताओं में कवित्व, तत्त्वज्ञान तथा प्रेम प्रसंगों का सम्मिश्रण होने के कारण वे कवितायें बहुत लम्बे समय तक प्रचार पाती रहीं।

मणिलाल का यश उनकी कविताओं की अपेक्षा उनकी इतर प्रवृत्तियों के कारण अधिक स्थायी हो गया है। 'प्रियंवदा' तथा 'सुदर्शन' के द्वारा वे साहित्य सेवा एवं समाज सेवा की जो लेखमाला प्रकट कर रहे थे उससे समस्त गुजरात में सद्विचार तथा सत्यदर्शन के लिये खूब ही प्रवृत्ति हुई। नारीप्रतिष्ठा तथा बालविलास के अतिरिक्त उन्होंने गुलाबसिंह (उपन्यास), 'चारित्र्य'

निबन्धात्मक ग्रन्थ, कान्ता (मौलिक नाटक), मालतीमाधव तथा उत्तर रामचरित के भाषांतर इत्यादि अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। इन इन सबसे भी अधिक उच्च सेवा करने वाला उनका 'सिद्धान्त सार' नामक ग्रन्थ है। आर्यतत्त्वज्ञान के दर्शनों का श्रेष्ठ परिचय देने वाला यह ग्रन्थरत्न इतनी उत्कृष्ट गौरवमयी शैली में लिखा गया है कि उसने मणिलाल के यश को अमर बना दिया।

नरसिंहराव भोलानाथ

मणिलाल का प्रथम काव्यसंग्रह सन् १८८७ ई० में प्रकट हुआ। उसी वर्ष नरसिंहराव की प्रथम कवितापुस्तक 'कुसुममाला' भी प्रकाशित हुई। प्रेमजीवन ने समकालीन यश प्राप्त किया, किन्तु कुसुममाला गुजराती कविता को नवीन जन्म देने वाली पुस्तक स्वीकार की गई। अंग्रेजी तथा संस्कृत के अध्ययन से प्राप्त संस्कारों के द्वारा नरसिंहराव के काव्यों को नवीन ही स्वरूप मिला। विषयों की नवीनता, संस्कृत भाषा के प्रभाव, छन्द एवं अलंकारों के नवीन-प्राचीन प्रयोग इत्यादि अनेक गुणों के कारण उनके काव्य आह्लादक तथा मोहक बन गये थे। इतना ही नहीं, वे गुजराती कविता का एक नवीन ही स्वरूप प्रस्तुत करने वाले सिद्ध हुए। नवीन कविता के प्रथम ग्रन्थ के रूप में कुसुममाला का भारी स्वागत किया गया। नरसिंह-मीरा इत्यादि प्राचीन कवियों से उसमें भिन्नता तो थी ही, साथ ही नर्मद, दलपत इत्यादि कवियों से भी इस कवि में ऐसी भिन्नता थी कि कुसुममाला के प्रकाशन से सभी को यह अनुभव हुआ कि गुजराती कविता ने नवीन अवतार धारण किया है।

नरसिंहराव के काव्य लेखन की गति मन्द होने पर भी वर्षों तक उन्होंने काव्य लिखे हैं। हृदयवीणा, नूपुर झंकार,-

स्मरण संहिता-इन तीनों काव्य संग्रहों में नव-जीवन के विचार हैं, नव साहित्य के उद्‌गार हैं, नव निर्माण के चिह्न हैं! नरसिंहराव नवीन कविता के आदि-कवि हैं! नवीन कविता के पिता हैं।

नरसिंहराव को कवि-रूप में परम कीर्ति प्राप्त हुई है; परन्तु कवि की अपेक्षा उन्होंने अवलोकन कार तथा भाषाशास्त्री के रूप में अधिक यशस्वी कार्य किया है। नवलराम के पश्चात् पुस्तकों के अवलोकन में शास्त्रीय दृष्टि तथा साहित्यसेवा,-दोनों कार्य सम्पादन करने वाले नरसिंहराव ही हैं। उनका स्वभाव उग्र था, वे कठोर स्पष्ट-वक्ता थे, अत्यन्त आत्मविश्वासी थे और कुछ अभिमानी भी थे; अतः उनके अवलोकन स्वच्छ एवं निर्मल नहीं रह सके। फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उनकी अवलोकन-शक्ति उच्च कोटि की थी। उन्होंने कुछ प्रसंगोचित निबन्ध भी लिखे हैं। उनके गद्यलेखों का संग्रह 'मनोमुकुर' के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ है।

अवलोकनकार की अपेक्षा भी भाषाशास्त्री के रूप में नरसिंहराव ने गुजरात की भारी सेवा की है। वे जैसे नवीन कविता के पिता हैं वैसे ही भाषाशास्त्र के भी लगभग पहले ही पण्डित हैं। व्रजलाल, कालिदास शास्त्री ने कुछ महान कार्य अवश्य किया है किन्तु यह तो निश्चित है कि नरसिंहराव के भाषणों द्वारा भाषाशास्त्र के अध्ययन को मिलने वाली प्रेरणा बहुत व्यापक तथा अत्यन्त प्रभावोत्पादक सिद्ध होगी। वे भाषण अंग्रेजी में दिये गये थे। उन भाषणों के दो संग्रहग्रन्थों में से एक का गुजराती भाषान्तर फारबस सभा बम्बई की ओर से प्रकाशित हुआ है।

केशवलाल ध्रुव

भाषा शास्त्र के दूसरे अभ्यासी केशवलाल ध्रुव मूक और शान्त कार्यकर्त्ता थे। प्राचीन साहित्य के प्रकाशन में जिस धीरज, उद्योग, कौशल एवं कला की आवश्यकता होती है वे सब केशव भाई में उच्चकोटि के थे। संस्कृत से गुजराती में भाषान्तर करने में उन्होंने अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है। भाषान्तरकार में भी कवित्व एवं सर्जक प्रतिभा की आवश्यकता होती है, यह उनके भाषान्तरों को देखने से स्पष्ट प्रकट हो जाता है। मुद्राराक्षस, गीतगोविन्द, विक्रमोर्वशी, श्रीहर्ष एवं भास के अनेकों नाटकों के भाषान्तरकार के रूप में उनकी सेवा उत्कृष्ट कोटि की है। भालण कृत कादम्बरी एवं पद्मनाभ कृत कहानड़दे-प्रबन्ध को प्रकाशित करने में सम्पूर्ण परिश्रम केशवलालजी ने ही किया है। वे अत्यन्त दयालु तथा निरभिमानी थे। अपने शान्त, कोमल, सद्भावपूर्ण स्वभाव तथा साहित्य-कार्य में अथक परिश्रम करने के गुण के कारण वे बहुत ही सम्मानपात्र एवं अत्यन्त प्रिय हो गये थे।

रमणभाई महिपतराम

रमणभाई की साहित्य-सेवा विभिन्न प्रकार की होने पर भी वे मुख्यतया तो हास्यरस के प्रथम लेखक के रूप में प्रसिद्धि पाये। 'भद्रंभद्र' में आया कटाक्ष अन्तिम भाग में व्यक्तिगत तथा कुछ अधिक कटु हो गया है फिर भी समकालीन समाज के एक व्यंग के रूप में वह पुस्तक सदैव स्मरणीय रहेगी। 'हास्यमन्दिर' 'नवी ईसप नीति' इत्यादि में विकृत परिस्थिति से हास्य उत्पन्न करने की उनकी कला खूब खिल उठी है। सामयिक चर्चा करने, भाषणों तथा लेखों के द्वारा ओजपूर्ण साहित्य उपस्थित करने में रमणभाई

ने अत्यन्त परिश्रम किया है। 'कुसुम-माला का काव्यतत्त्व कितना सुन्दर एवं उच्च है"–यह दिखा कर उन्होंने तत्कालीन अभिप्राय गढ़ने में अच्छी सहायता की थी। गुजराती में काव्यशास्त्र की चर्चा करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ फुटकर कवितायें व एक नाटक (राई का पर्वत) भी लिखा है। सरल उद्गार, सादे विचार तथा सुन्दर कवित्व की दृष्टि से उनकी कवितायें पठनीय हैं। गुजराती के मौलिक नाटकों में उनके नाटक का बहुत उच्च स्थान है। पात्रविकास, घटनाओं की कुशल योजना, भाषा तथा विचारों की सौन्दर्यभरित सरलता, काव्य तथा संवादों में समाविष्ट सफल चारुता तथा नाट्य संयोजन में संचित योग्यता में श्रेष्ठतम कलाविधान युक्त होने के कारण 'राई का पर्वत, गुजराती के सर्वश्रेष्ठ पाँच-सात सफल नाटकों में से एक है।

रमणभाई की लोकसेवा इतने विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई थी कि वे इतनी अधिक साहित्य-सेवा कर सके, यही आश्चर्यजनक घटना है। वे स्वभाव से ही परोपकारी, दयालु, अत्यन्त सादे तथा सरल थे; अतः उनका समय रोकने वाले व्यक्तियों का पार नहीं था। वे शान्तिपूर्वक सभी को अपनी सेवाओं से लाभान्वित करते थे।

उनकी समस्त कृतियों का संग्रह गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी ने प्रकाशित किया है। अतः अध्ययन कर्त्ताओं के लिये अच्छी सुविधा हो गई है।

इसी युग में अन्य भी अनेकों छोटे-बड़े साहित्य सेवी हो गये हैं। विविध विषयों पर अनेकों पुस्तकें लिखी गई। यहाँ केवल कादम्बरी के विषय में कहा जायेगा। कादम्बरी संस्कृत साहित्य की समासप्रचुर तथा प्रलंबिनी शैली की एक श्रेष्ठतम पुस्तक है। उसका भाषान्तर करना अत्यन्त कठिन कार्य है। उस पुस्तक का

गुजराती भाषान्तर करने में छगनलाल हरिलाल पंड्या ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। यह भाषांतर तो अत्यन्त सुन्दर हुआ ही है साथ ही उसमें भाषा का नवीन ही प्रकार का स्वरूप भी निखरा है। नर्मद, दलपत तथा नवलराम के गद्य से सरस्वती-चन्द्र तथा नरसिंहराव के गद्य का स्वरूप सर्वथा भिन्न हो गया है। गद्यविकास के इस क्रम में कादम्बरी ने बड़ी सहायता की है। भोलानाथ साराभाई की "ईश्वर प्रार्थना माला" ने भी इसी प्रकार की सहायता की होगी। भाषा का यह विकास ध्यान आकर्षित करने वाला है।

यूनीवर्सिटी की उपाधियाँ ग्रहण करके, प्राप्त ज्ञान के प्रचार के द्वारा गुजराती साहित्य की सेवा करने वाले अन्य व्यक्ति भी हो गये हैं। हरिलाल हर्षदराय ध्रुव (सन् १८५६—१८९६ ई०), आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव (सन् १८६९—१९४२ ई०), उत्तमलाल केशवलाल त्रिवेदी (सन् १८७२—१९२६ ई०), नर्मदाशंकर, देवशंकर मेहता (सन् १८७१—१८३५ ई०) तथा कृष्णलाल, मोहनलाल झवेरी (जन्म सन् १८६८ ई०) ने अपनी विद्वत्ता और साहित्य सेवा के द्वारा गुजरात का अच्छा हित साधन किया है।

हरिलाल ध्रुव ने कवितायें लिखी हैं किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने युवक कवियों को बहुत प्रोत्साहित किया है। 'चन्द्र' नामक मासिक पत्र द्वारा नवीन कवियों को प्रोत्साहन देकर प्रख्याति दिलाने का कार्य वे बड़े उदार भाव से करते थे। यों, नवीन कवियों को उत्पन्न करने में वे परोक्ष रीति से साधन रूप बने।

आनन्दशंकरजी की प्रखर, अद्वितीय विद्वत्ता तथा अगाध उद्योग से गुजरात बहुत फलीफूली। 'वसन्त' मासिक पत्र में लेख लिख कर,

सामयिक चर्चा और उत्कृष्ट समीक्षा के द्वारा, विपुल अध्ययन तथा गहन सारग्राही शक्ति से उन्होंने गुजरात को बहुत ही लाभान्वित किया है। उनके द्वारा लिखित " आपणो धर्म" हमारे दर्शनों के सरल परिचय, शुद्ध साहित्यिक प्रतिभा, प्रभावशाली समालोचना, पूर्वीय-पश्चिमीय विचारों के सुन्दर तुलनात्मक परिचय के अतिरिक्त अनेकों तात्त्विक एवं साहित्य गौरव से परिपूर्ण लेखों के द्वारा गुजराती साहित्य में युगों तक अद्वितीय ग्रन्थ प्रमाणित होता रहेगा। नीति-शिक्षण, धर्मवर्णन,, श्रीभाष्य इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार की अनेकों पुस्तकें व लेख लिख कर उन्होंने गुजराती साहित्य की अनुपम सेवा की है।

दुर्भाग्य से उत्तमलाल त्रिवेदी की वृत्ति दूसरी ओर आकर्षित होगई, इसलिये वे सहित्यसेवा बहुत कम कर सके। स्थिर, गंभीर विचारक सन्तुलन स्थिर रख कर प्रत्येक प्रश्न पर निर्णय करने की अद्भुत शक्ति धारण करने वाले निष्पक्ष चिन्तन व स्पष्ट विचारप्रदर्शन की उच्चतम योग्यता रखने वाले उत्तमलाल स्वस्थ, शान्त तथा एकनिष्ट कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने लोकमान्य तिलक की गीता का गुजराती में भाषान्तर किया है वह भाषान्तर इतना सुन्दर एवं यथार्थ है कि उस एक ही कृति से उत्तमलाल को उत्तकृष्ट कोटि के विद्वान् होने का गौरव प्राप्त हो गया। उन्होंने अन्य भी २-३ पुस्तकें लिखी हैं,-किन्तु वे विस्मृति के गर्भ में लीन हो चुकीं। 'समालोचक' तथा 'वसन्त' में प्रकाशित हुए उनके लेखों का संकलन होने की भारी आवश्यकता है।

नर्मदाशंकर शक्तिशाली तथा संस्कारपुनीत थे फिर भी उनका जीवनव्यवसायी था; अतः वे साहित्यसेवा बहुत कम कर पाये। वे 'अखा नुँ जीवन', 'तत्त्वज्ञान नो इतिहास' तथा 'शाक्त सम्प्रदाय' लिख कर कुछ उपयोगी सेवा अवश्य कर गये हैं किन्तु

अपनी शक्ति के अनुसार वे साहित्य को सम्पूर्ण लाभ नहीं पहुँचा सके।

कृष्णलाल झवेरी फारसी तथा बंगाली के श्रेष्ठ विद्वान हैं। उन्होंने उन-उन भाषाओं के दो-दो चार-चार श्रेष्ठ ग्रन्थों का भाषान्तर करके गुजराती साहित्य की अच्छी सेवा की है। उन्होंने गुजराती साहित्य का परिचय देने वाले दो ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे हैं जिनके भाषान्तर गुजराती में हुए हैं। उन्होंने गुजराती साहित्य, गुजराती समाज तथा इतर प्रकार की सार्वजनिक सेवा करने में सदैव तत्परता दिखला कर, एकनिष्ठा एवं शुभ वृत्तियों से सभी कार्यों में सहयोग देकर भारी यश और प्रतिष्ठा प्राप्त किये हैं।

बम्बई यूनीवर्सिटी की स्थापना के पश्चात तुरन्त ही शिक्षा प्राप्त करके उसका लाभ गुजरात को देने वाले इन विद्वानों ने गुजराती साहित्य एवं समाज की उच्च कोटि की सेवा की है।

यूनीवर्सिटी के उपाधिधारियों के द्वारा मिलने वाले उच्च कोटि के साहित्य का प्रचार अधिकांशतः नगरनिवासी शिष्ट पुरुषों के शिक्षित वर्ग में ही था। नगर की अल्पशिक्षित जनता तथा ग्रामनिवासी विशाल जनसमुदाय तो उसका स्पर्श तक नहीं कर पाते थे। किन्तु उस वर्ग के उपयुक्त साहित्य का निर्माण भी हुआ है। साधारण अल्पशिक्षित जनता के लिये प्रभावोत्पादक तथा सुधार में सहायभूत होने वाले उपदेशपूर्ण, उपकारक साहित्य का निर्माण करने वालों में श्रीमन् नृसिंहाचार्य (सन १८५४-१८९७ ई०), नारायण हेमचन्द्र (सन १८५५-१९०४ ई०), अमृतलाल पढ़ियार (सन् १८७०-१९१९ई०) तथा इच्छाराम सूर्यराम देसाई (सन् १८५७-१९१२ ई०) प्रमुख हैं।

श्रीमन्नृसिंहाचार्य का भामिनी भूषण, अमृतलाल पढ़ियार की स्वर्ग सम्बन्धी पुस्तकें, इच्छाराम द्वारा प्रकाशित चन्द्रकान्त तथा नारायण हेमचन्द्र की असंख्य पुस्तकों ने जनसमुदाय को ज्ञान तथा उपदेश प्रदान करने का बहुत सुन्दर कार्य परिपूर्ण किया है।
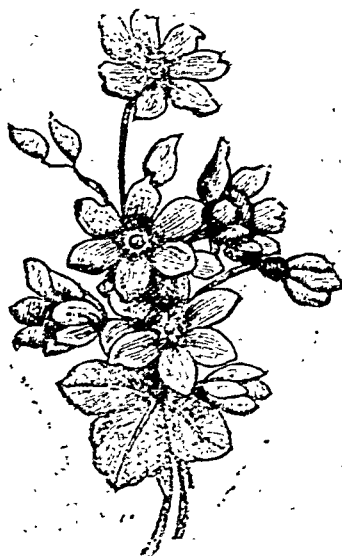
प्रकरण ६, नवीन कविता

गोवर्द्धनराम, मणिलाल तथा रमणभाई ने जो कवितायें लिखी हैं वे युगपरिवर्तन के रंग में रँगी होने पर भी नवयुग की कविता पर प्रभाव डाल सकने में समर्थ नहीं थीं। गुजराती कविता को नया जन्म देने वाली, नव गुजरात को नवीनता से आकर्षित एवं प्रभावित करने वाली कविता तो नरसिंहराव की ही थी। परिमाण में कम होने पर भी उनकी कविता का प्रभाव नवयुग पर गहरा पड़ा है। मणिशंकर रत्नजी भट्ट, बलवन्तराय ठाकोर, हरिलाल हर्षदराय ध्रुव जैसों को भी नरसिंहराव से ही प्रेरणा एवं प्रकाश मिले थे। मणिलाल नभुभाई या मस्तकवि बालाशंकर उल्लासराम पर प्रभाव नहीं पड़ सका। सन् १८९०-१८९५ ई० में तथा इसके बाद होने वाले कलापी, बोटादकर, खबरदार, ललीत पर नरसिंहराव का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। गोवर्द्धनराम, मणिलाल का कुछ कुछ प्रभाव किसी किसी पर पड़ा ज्ञात होता है किन्तु समग्र रूप से नवीन कविता के सर्जक तथा प्रेरक तो नरसिंहराव ही थे!

नरसिंहराव के द्वारा प्राप्त नवीन रूप चिरस्थायी नहीं रह सका। साहित्यमात्र और विशेष रूप से कविता युग-युग में नवीन देह धारण करते रहते हैं। नरसिंह-मीरा-युग की कविता हमारी कविता का प्राचीनतम अवतार है। उसके पश्चात् प्रेमानन्द, अखा, शामल, प्रीतमदास, दयाराम, नर्मद, दलपत, नवलराम:—इन सबने काव्य-देह का रूपान्तर करने में भाग लिया है। इनके

बाद नरसिंहराव ने गुजराती कविता को नव जन्म दिया और उनके बाद भी अधिक सुन्दर, अधिक आकर्षक, अधिक अलंकृत तथा अधिक हृदयंगम स्वरूप नान्हालाल कवि ने अर्पित किया।

मणिशंकर रत्नजी भट्ट

नरसिंहराव के पश्चात् तथा नान्हालाल के पहले तीन-चार समर्थ साहित्यकारों ने गुजरात को लाभान्वित किया है। मणिशंकर रत्नजी भट्ट ने लघु काव्यों के नवीन स्वरूप में उच्च कुशलता प्रदर्शित की। कल्पना तथा भावनर्तन में चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करने की नवीन रीति उत्पन्न की। मनोविकारों के कम्पन भरे आन्दोलनों की झनकार उत्पन्न करने तथा कवित्वमय वातावरण प्रसारित कर देने की कलापूर्ण चतुरता दिखाते हुए उन्होंने स्वल्प किन्तु इतनी रसपूर्ण कवितायें लिखी हैं कि केवल ४०-५० कविताओं के लेखक होने पर भी वे गुजराती साहित्य में अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। उनके 'वसन्त विजय' तथा 'चक्रवाक मिथुन' गुजराती काव्य में उच्च आनन्द प्रदान करते हुए छन्द, भाषा, अलंकार तथा रचना-सौन्दर्य से सुशोभित श्रेष्ठतम काव्य हैं।

बलवन्तराय क० ठाकोर

बलवन्तराय 'आरोहण', 'खेती' तथा अनेकों सुन्दर सॉनेटों को लिखने वाले विद्वान कवि के रूप में सुन्दर सत्कार पाये हैं। उनमें भाव तथा कल्पना की कोमलता या कमनीयता की अपेक्षा पांडित्य तथा बुद्धि-वैभव अधिक है; अतः उनकी कवितायें अत्यन्त सुन्दर होने पर भी अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकीं। विद्वत्प्रिय वे अवश्य हैं। उनका ग्रहण किया हुआ पृथ्वी छन्द उनके अनुयायी

युवक कवियों में सुन्दर सत्कार पाया है। नवीन प्रयोग करने की भविष्य दृष्टि ने वलवन्तराय की कीर्ति में चार चाँद लगा दिये हैं।

कलापी

गुजरात को काव्यप्रेमी तथा काव्यप्रशंसक वनाने वाले कलापी ने नरसिंहराव तथा नान्हालाल के बीच के समय में कवि के रूप में अच्छी ख्याति पाई है। हरिलाल हर्षदराय ध्रुव ने कुछ कवितायें लिखी हैं किन्तु वे तो विस्मृत होती जा रही हैं। उनकी कवितायें चाहे भुला दी जायँ किन्तु कवियों को प्रोत्साहित करने तथा प्रकाश में लाने का जो कार्य उन्होंने किया है वह तो नहीं भुला दिया जाना चाहिये। उनके चन्द्र नामक मासिक पत्र द्वारा कलापी, बोटादकर, ललित, जटिल, त्रिभुवन प्रेमशंकर तथा अन्य बहुत से लेखकों को प्रोत्साहन मिला था। "केकारव" प्रकाशित होने के पूर्व कलापी को कवि रूप में प्रसिद्ध करने में चन्द्र का बहुत बड़ा भाग था। कलापी ने किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी किन्तु उनका अंग्रेजी का वाचन एवं ज्ञान विशाल था। उन्हें काव्य-साहित्यका अच्छा परिचय था। मणिलाल नभुभाई, हरिलाल हर्षदराय ध्रुव तथा मणिशंकर रत्नजी भट्ट,–इन तीनों का कलापी पर व्यापक एवं गहरा प्रभाव था। कलापी का हृदय अत्यन्त ही संवेदनशील था, स्वभाव दूसरों की चिन्ता करने वाला था, प्रकृति उग्रता तथा नम्रता के अद्भुत सम्मिश्रण से युक्त थी। जैसी कोमलता उनके भावों में थी वैसी ही कोमलता वे भाषा में भी ला सके थे। दैनिक जीवन की छोटी-मोटी बातों को वे इस चतुरता से काव्यमय बना देते थे कि पाठक बरबस मुग्ध हो उठता है! भाषा के माधुर्य के साथ ही साथ छन्द का प्रवाह इतना सुन्दर होता था कि पाठकों को उनके काव्य सहज ही कण्ठस्थ

हो जाते थे। साधारण पाठकों तथा साहित्य-रसिकों,-दोनों को ही उनके काव्य रसमुग्ध बना देते थे। "कन्या अने क्रौंच", वीणा नो मृग", "महात्मा मूलदास", "आपनी यादि", "तुलसी" (विल्वमंगल) इत्यादि बहुसंख्यक काव्यों से युक्त उनका "केकारव" गुजराती साहित्य में सदैव मधुर ध्वनियाँ गुंजित किया करेगा, यह निर्विवाद सत्य है।

नान्हालाल

नरसिंहराव ने गुजराती कविता को नया स्वरूप; नवीन देह दिया; कलापी ने मधुर झनकार युक्त प्रवाहपूर्ण छन्दों में संवेदना के मृदुता भरे कम्पोत्कम्प एवं हर्ष-शोक के भाव भरित वर्णन करके कविता को लोकप्रिय बनाया। तत्पश्चात् नवीन कवि नान्हालाल ने गुजराती कविता के समग्र स्वरूप को मनोहर बना दिया। उन्होंने समझाया कि कविता अर्थात् कल्पना! कविता की भाषा अर्थात् सामान्य भाषा से भिन्न प्रकार की भाषा,-अर्थघन, प्रकाशपूर्ण, माधुर्य तथा प्रसादगुण से भरपूर! गुजरात के कवि अपना समाधान इस प्रकार कर लेते थे कि शब्दभण्डार में अभिवृद्धि करने वाली कविता एक आज और दूसरी दो वर्ष के पश्चात् लिखने पर भी चलेगा! कलापी के अतिरिक्त अन्य कवियों में मन्थरता बहुत थी; फिर वह चाहे अवकाशाभाव से हो, ऊर्मियों के अभाव से हो या घटनाओं तथा कारणों के अभाव से! इन सब कवियों की अपेक्षा नान्हालाल का लेखन-प्रवाह अधिक विपुल तथा अधिक गतिशील है।

प्रेम तथा विवाह के उच्चादर्श नान्हालाल की कविताओं का प्रधान स्वर है। "विवाह करना अर्थात् प्रभुता में पदार्पण करना",- ऐसा लिखने वाला कवि "मन माने वह वर; अन्य सभी पर!"-

यह समझाने में भी शिथिल नहीं है। स्वीकृति मात्र "विवाह" नहीं है; वह केवल संस्कार भी नहीं है; दिव्य प्रेरणा से आकर्षित हृदयों का समर्पण ही "विवाह" है। लग्न की इस उन्नत एवं पवित्र भावना को कविता के द्वारा गुजरात में लोकपरिचित कराने वाले नान्हालाल को किसी ने "प्रेम का देवदूत" कहा है, यह उचित ही है।

नान्हालाल की कविता में प्रसाद है, प्रकाश है, प्रतिभा एवं प्रताप है; फिर भी उसमें एक प्रकार की समरसता है। विषयों का विपुल वैविध्य होने पर भी उनकी लेखनशैली में ऐसा नान्हालालत्व समा रहा है कि पाठकों को रोचक एवं आकर्षक लगने पर भी उसकी एक-रसता दृष्टि समक्ष आ ही जाती है। ग्रामीणों की चर्चा हो या अकबर,-नूरजहाँ की बात हो; योगी बोल रहा हो या पारधी; संघमित्रा हो या महाभारत;-विविध प्रकार के विषय होने पर भी लेखनशैली सर्वत्र एकरूपिणी है। नान्हालाल ने छन्दों में खूब स्वतन्त्रता ग्रहण की है। उनके कुछ परिवर्तन तो अनुकूल ही नहीं,-मोहक भी हैं अतः वे अनुकरणीय हो गये हैं; किन्तु उनकी 'डोलनशैली' तो सबकी समझ से परे रही है। उसे न कोई समझ सका न स्वीकार ही कर सका है। नान्हालाल ने उस शैली में भारी सफलता प्राप्त की है। उस शैली में किसी प्रकार का नियम या परिमाण न होने से अन्य लेखक उसमें सफल नहीं हो सके। मणिशंकर रत्नजी भट्ट स्वयं उसमें सफल रहे। नान्हालाल की कृतियों में जो नैसर्गिक सत्त्व तथा स्वाभाविक दोलन आ जाता है वह अन्य किसी को सिद्ध नहीं हो सका। डोलन शैली एक मात्र नान्हालाल की ही विशिष्टता है।

अलंकार की प्राचीन शास्त्रोक्त प्रणालिका में नान्हालाल ने नवीन रीतियाँ प्रस्तुत की हैं। उनकी कल्पना अलंकार परम्परा की लहरें इतने वेग से उत्पन्न करती है कि एक के बाद एक

अलंकार आवेग के साथ वाहर निकल पड़ने को उछलते रहते हैं। परिणाम स्वरूप कई वार एक-दूसरे अलंकार का विस्मरण या सम्मिश्रण अद्भुत अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। नैसर्गिक उच्च काव्य शक्ति प्राप्त कवि की इस भाँति की अस्पष्टता अनेक वार आह्लादक वन जाती है। अस्पष्टता में भी पाठक आनन्दविभोर हो जाता है।

नान्हालाल की काव्यसृष्टि की नवीनता प्रत्येक कृति में किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होती ही रहती है। वसन्तोत्सव, जया-जयन्त, इन्दुकुमार, महा-भारत अकवर बादशाह, नूरजहाँ, विश्वगीता, सारथि एवं 'केटलाँक काव्यों' के अनेकों काव्यों द्वारा गुजराती कविता-देह को नवीन जन्म देकर अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक व मनोरंजक वनाने वाले नान्हालाल ने साहित्य-सर्जन में विशिष्ट कीर्ति सम्पादित की है।

उनके गीत अनेकों विशेषताओं में एक और अभिवृद्धि करते हैं। हृदय को आर्द्र वना कर, भावों का उल्लासमय नर्तन जगा कर, मस्तिष्क को सुप्रसन्न वना कर उनके गीत शब्द माधुर्य, लय माधुर्य तथा ताल-माधुर्य के द्वारा उच्च कोटि का आनन्द प्रदान करते हैं। उनमें सहज कलाविधान इतनी स्वाभाविक रीति से आ जाता है कि वह सुनने मात्र से ही हृदय में पैठ कर साहित्यानन्द की अनन्त धारायें वरसाया करता है। नरसिंह की प्रभातियों, मीरा के भजनों तथा दयाराम की गरवियों की भाँति ही नान्हालाल के गीत भी अद्भुत नैसर्गिक शक्ति की अनुपम कृतियाँ हैं।

खबरदार

नान्हालाल के समकालीन कवियों में खबरदार बहुत सन्मान और प्रतिष्ठा पाये हैं। उनका काव्यप्रवाह उन्मुक्त निर्झर की भाँति अस्खलित प्रवाहित होता रहा है। खबरदार की प्रतिभा वातावरण को बड़ी सफलता एवं त्वरा के साथ ग्रहण करने वाली है; इसलिये उनकी रचनायें वातावरण के अनुसार अपना रंग बदलती रही हैं। उन्होंने दलपतराम से प्रभावित होकर 'काव्य-रसिका' लिखी और नरसिंहराव से प्रभावित हो कर लिखी 'विलासिका'। देश में स्वराज्य तथा राष्ट्रीय भावना का प्रसार होने पर 'भारत नो टंकार' लिखा। रास का युग आने पर 'रास चन्द्रिका' लिखी। यों समय-समय पर वातावरण के अनुकूल उसी रंग में रंग कर साहित्य सर्जन करने को वे सदैव तत्पर रहे हैं। साहित्य सृष्टि में जो कुछ भी "गुण-गौरवमय" दृष्टि गोचर हो, उससे मुग्ध हो कर, उसके गुणों को ग्रहण करके, उन गुणों को अपनी कृतियों में गूंथ देने की कुशलता खबरदार की कृति को नवीनतम तथा मनोरंजक बना देती है। किन्तु वह मनोहरता कब तक रसमयी बनी रहेगी यह तो भविष्य ही बतला सकेगा। खबरदार में सामान्य सत्त्व बहुतायत से होने पर भी बुद्धि तथा कल्पना, कवित्त्व तथा आदर्श रस और भावोर्मियां साधारण कोटि के ही हैं; अतः उनकी समग्र कृतियाँ साहित्य-निधि की अमूल्य रत्न-राशि क्वचित् ही गिनी जायेंगी। "गुणवन्ती गुजरात" जैसे कतिपय काव्य अवश्य ही अमर कीर्ति का उपभोग करेंगे। हाँ, युगविजयी तो उनकी सभी कृतियाँ रही हैं। 'सन्देशिका', 'भारत नो टंकार' अधिक समय तक स्थिर रहने वाली कृतियाँ हैं। 'दर्शनिका' के आज जितने प्रशंसक भविष्य में भी रहेंगे या नहीं, यह शंकास्पद विषय है।

समकालीन यश प्राप्त करने में खबरदार परम भाग्य शाली रहे हैं।

बोटादकर

(१८७०-१९२४ ई०)

खबरदार अथवा नान्हालाल की भाँति विपुल साहित्य का निर्माण न करने पर भी बोटादकर और ललित ने गुजराती साहित्य में अच्छी वृद्धि की है। ये दोनों गार्हस्थ्यजीवन के कवि हैं; बोटादकर ने दाम्पत्यप्रेम तथा हिन्दू गृहसंसार में आदर्श मानी जाने वाली सम्मलित तथा आनन्ददायिनी स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। कुटुम्बियों का परस्पर स्नेहभाव कैसा सुखदायी होता है तथा स्वजनों के सहवास से संसार कैसा सुखमय हो जाता है;- इस विषय के अनेकों सुन्दर काव्य,-विशेषतया रास लिख कर गार्हस्थ्यजीवन के उज्वल पक्ष को चित्रित करते हुए बोटादकर ने हिन्दू संसार के सुन्दर आदर्शों को काव्यमय रूप दे दिया है। वे संस्कृत के पण्डित थे इसलिये उन्होंने संस्कृत शब्दों का अधिकता से प्रयोग किया है। किसी समय तो पूरी पंक्ति एक ही समास-युक्त होती है। इतना होने पर भी उनकी भाषा वर्ण-सुगम तथा विचार सर्वगम्य होने से सबको उनके काव्य कण्ठस्थ हो जाते हैं। भाव एवं प्रसंग सबके अनुभवगम्य होने से पाठक उनका सम्पूर्ण रस ले सकते हैं। यदि कभी अपरिचित संस्कृत शब्द आ भी जाता है तो पाठक उसे निःसंकोच भाव से निभा लेते हैं।

ललित

(सन् १८७७-१९४६ ई०)

जन्मशंकर महाशंकर बुच 'ललित' को अपने जीवन के प्रारंभकाल में दुःख तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से हो कर

गुजरना पड़ा था इसलिये उनके काव्य प्रणयन का प्रारंभ विषाद, ग्लानि, असन्तोष तथा विरागी वृत्ति से हुआ था। परन्तु धीरे धीरे विषाद के बादल दूर होते गये और ज्यों-ज्यों जीवन के आनन्द का अनुभव होने लगा त्यों ही त्यों उनकी कला-कृतियों में भी परिवर्तन होता गया और स्नेह, स्वजनों के सहवास का आनन्द तथा जीवनानन्द के आदर्श कविता में चित्रित होने लगे। स्त्रियों के त्यागमय जीवन का पुरुषों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, स्त्रियों का सहवास पुरुषों के जीवन के लिये कितना उत्साहप्रद एवं शान्तिदायक है, स्त्रियाँ प्रेम तथा स्वार्पण के कैसे स्वर्गीय आदर्शों का सेवन करने वाली हैं,-इस विषय में लिखते हुए ललित धीरे धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक नारी-पूजा की ओर झुकते हैं। वे 'मातृज्योति नी ज्वलन्त ज्वाला', 'नारी तुँ नारायणी', 'सजात जोडाँ जातभोग थी',-जैसी उच्च भावना श्रवणमधुर तथा भावमधुर गीतों के द्वारा गुजरात के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। उनके द्वारा लिखित पुस्तक "जयभूमि नुँ जय मंगल" में तत्वज्ञान का प्रभाव आ गया है फिर भी संभव है, किसी समय वह 'वन्दे मातरम्' की भाँति ही पुनरुद्धार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करे। उसका एक गीत 'जात ने स्वदेश काज काँ न होमिये ?"-एक समय गुजरात में स्थान-स्थान पर गाया जा रहा था।

सन् १८८५ ई० से १९३०-३५ ई० तक हो गये ये सब हमारे समर्थ कवि हैं। राममोहनराय जसवन्त देसाई उर्फ सुमन्त २०-२५ कविताओं के रचयिता होने पर भी अपने समय के एक समर्थ रचनाकार माने जाते हैं। उनका काव्य-संग्रह 'तरंगावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। उन्होंने २-४ सुन्दर काव्य लिखे हैं किन्तु संसार तो भारी संख्या पर ही ध्यान देता है, इसलिये ऐसे छोटे-छोटे संग्रह भुला दिये जाते हैं।

ऐसे ही एक दूसरे कवि **वसन्त-विनोदी** चन्दुलाल मणिलाल देसाई हैं। गुजरात उन्हें भी भूल गई है। उन्होंने 'विधवा,' 'कुमारिका' इन दो संक्षिप्त काव्यों के अतिरिक्त बहुत से राष्ट्रीय गीत भी लिखे हैं। किन्तु जीवनक्रम पलट जाने से उनकी साहित्यसेवा बन्द हो गई। देश सेवा तो वे खूब कर ही रहे हैं।

अन्य लेखकः—

उपरोक्त रचनाकारों के अतिरिक्त एक-एक दो-दो सुन्दर काव्य लिख कर साहित्य-जगत में अच्छा स्थान प्राप्त करने वाले कुछ साहित्यकार ध्यान देने योग्य हैं। 'भूली पंथ भमुँ दिन-रात, मने सन्त बतावो जी बाट' के लेखक **केशव ह० सेठ**; गिरिनार के वनों तथा ऋतुओं का वर्णन नवीन ही रीति से करने वाले, 'रतनवा नो गरबो' एवं अनेकों राष्ट्रीय बाल-गीत लिखने वाले **त्रिभुवन गौरीशंकर व्यास**. तथा "एक ज दे चिनगारी" के लेखक **हरिहर भट्ट** के काव्यों को भुला देने से गुजराती कविता-साहित्य अपूर्ण ही रह जायेगा।

गली गली में फेरी लगा कर गाने वाले बहुत से कवि जन साधारण में अत्यन्त लोकप्रिय हो जाते हैं; परन्तु उन सबका वर्णन इस **प्रारंभिका** में नहीं किया गया है। 'मणिकान्त-काव्य माला' के कर्त्ता ऐसे ही लोकप्रिय कवि थे। यद्यपि इस प्रकार की सीधी सादी, सरल कविताओं को साहित्य में कोई स्थान नहीं दिया जाता फिर भी अल्पशिक्षित समाज में उनका बहुत प्रचलन हो जाता है और वे अत्यन्त जनप्रिय बन जाती हैं। शीघ्र काव्य, समस्यापूर्ति में भी कभी कभी अच्छा कवित्व दृष्टि गोचर होता है किन्तु ऐसी वस्तुएँ साहित्य के इतिहास में स्थान प्राप्त कर सकती हैं कि नहीं ?-यही प्रश्न है! प्रारंभिका में तो इतना संकेत कर देना ही पर्याप्त है।

प्रकरण ७,—उपन्यास

कहानियाँ सुनना व सुनाना मानव-प्रकृति का एक स्वभाव ही है। आदि काल से ही मनुष्य अनेकों कथा-कहानियाँ कहता-सुनता आया है। कथा-वार्ताओं के संग्रह तैयार होते आये हैं। अनेकों कहानियाँ अत्यन्त प्रिय होने के कारण सदियों तक प्रचलित रहती हैं। कहानियाँ पहले पद्य में लिखी जाती थीं, कारण कि श्रवणमधुर होने के साथ ही साथ वे सरलता से याद भी रह जाती थीं। गुजराती में भी ऐसा ही हुआ। पुरातनकाल में कहानियाँ पद्य में ही लिखी गई हैं। प्रेस के प्रचलित होने के पूर्व का सम्पूर्ण साहित्य पद्य में ही था,-गद्य लेखन तो प्रेस के प्रचलित होने के पश्चात् ही प्रकट हुआ है। अंग्रेजों के साथ सम्पर्क बढ़ने से देश के साहित्य, समाज तथा व्यक्तिगत जीवन पर नये नये प्रभाव पड़ने लगे। परिणाम स्वरूप जो साहित्य उत्पन्न हुआ उसमें उपन्यास तथा कहानियों को भी प्रोत्साहन मिला।

गुजराती साहित्य के सर्वप्रथम उपन्यास "करण घेलो" को लिखने की प्रेरणा एक अंग्रेज मित्र ने ही दी थी। उसने अंग्रेजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति ही गुजराती में भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिये नन्दशंकरजी से कहा; अतः उन्होंने करण वाघेला का समय चुन कर 'करण घेलो' नामक एक अत्यन्त सुन्दर तथा रोचक उपन्यास लिखा एवं अनेकों उपकथाओं का भी उसमें समावेश किया।

करण घेलो की भाषा संस्कारशील तथा लेखनशैली आकर्षक है। वह सभी को सहसा रुच जाय ऐसी है अतः करण

घेला अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। साधारण पाठकों तथा पाठशालाओं में उसका बहुत प्रचार हुआ।

करण घेला से प्रेरित हो कर उसी के अनुकरण पर अनेकों कहानियाँ लिखी गई किन्तु उसके समान लोकप्रियता प्राप्त करने का सत्त्व किसी में भी नहीं था। करण घेला सन् १८६६ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् कोई अच्छा उपन्यास प्रकाशित होने में बीस वर्ष बीत गये। सन् १८८७ ई० में 'सरस्वतीचन्द्र' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। उस समय गुजरात को उपन्यास का निखरा हुआ स्वरूप मिला।

सरस्वतीचन्द्र में उपन्यास के सभी तत्त्व तथा गुण विद्यमान हैं। उसका 'उद्देश' उच्च है। 'वस्तु' की कल्पना मनोहारी ही नहीं, अपितु उच्च आदर्श से मन को आह्लादित करने वाली, उन्नतिपथ पर ले जाने वाली तथा सर्वथा नवीन होने से पाठकों को आकर्षित एवं सन्तुष्ट करने वाली है। कथावस्तु जितनी भव्य है उतनी ही समर्थ तथा सत्त्वशालिनी उसकी संकलनशक्ति भी है। पात्रों के आलेखन, प्रसंग वर्णन तथा संवाद-चातुर्य (कथोपकथन) में उच्च कोटि की कला है। कथा का प्रवाह इतनी अबोध गति से बहा है कि किसी-किसी स्थान पर होने वाले विषयान्तर या स्खलन भी पाठक को रसच्युति अथवा रसभंग जैसे नहीं लगते अपितु वे भी उपदेशप्रद तथा विनोद प्रिय ही लगते हैं। उसकी भाषा प्राचीन तथा तत्कालीन भाषा से सर्वथा भिन्न है। सरस्वतीचन्द्र के अनेक गुणों में से एक,-उसकी संस्कारशील, समर्थ, अर्थगम्भीर तथा प्रसाद गुणयुक्त भाषा है। उसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है फिर भी गुजरातीपन में न्यूनता नहीं आने पाई है। गुजराती भाषा का ऐसा ही सामर्थ्य तथा सौन्दर्य पहली बार 'कादम्बरी' के भाषान्तर में छगनलाल हरिलाल पंड्या ने दिखलाया था। कादम्बरी

विद्वद्वर्ग,–सुशिक्षित समुदाय में प्रचलित प्रिय पुस्तक थी किन्तु सरस्वतीचन्द्र ने विशाल गुजराती समाज में प्रचार तथा लोकप्रियता प्राप्त किये। उसने गुजराती भाषा को नवीन स्वरूप दिया। इतना ही नहीं, उसने पाठकों की उत्कण्ठा को भी प्रज्ज्वलित किया। गुजरात के विचारक्षेत्र में श्रेष्ठतम संस्कारों का बीजारोपण करके उसने उसे ऐसा मुग्ध किया कि सन् १८८७ से १९१०–१५ ई० तक वह (गुजरात) मानो सरस्वतीचन्द्र मय ही बन गई।

सरस्वतीचन्द्र के अनुकरण पर और भी रचनायें हुईं। समाज तथा देश में होने वाली नव जाग्रति एवं उससे उत्पन्न हुए नवीन विचारों की चर्चा करने की दिशा सरस्वतीचन्द्र के द्वारा ही ध्यान में आई। उसने गुजरातियों में अद्भुत मनोमंथन उत्पन्न किया था। फलतः अनेकों लेखकों को उससे प्रेरणा मिली और बहुतसी कहानियों की रचना हुई। किन्तु किसी भी लेखक में इतना सामर्थ्य नहीं निकला जो गोवर्द्धनराम की बुद्धि तथा सर्जनशक्ति (प्रतिभा) को भुला देता। जो–जो प्रयत्न हुए वे सब क्षणजीवी ही रहे। भोगीन्द्रराव कृत उषाकान्त, मृदुला, ज्योत्स्ना इत्यादि उपन्यासों में गोवर्द्धनराम का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भोगीन्द्रराव की लेखनशक्ति गतिशील थी। उन्होंने 'एसिस्टेंट कलेक्टर', सितार नो शोख, मोहिनी, अजामील इत्यादि अनेकों उपन्यास लिखे हैं। इतर लेखकों ने भी उपन्यास लिख कर पाठकों की उत्कण्ठा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया है। किसी-किसी उपन्यास ने तत्कालीन लोकप्रियता भी प्राप्त की। अलक्ष्य ज्योति, विक्रम नी बीसवीं सदी, हिन्द अने ब्रिटानिया, औरंगजेब अने राजपूतो, मेवाड़ नी जाहोजलाली, झाँसी नी राणी, अढारमी सदी नुँ हिन्दुस्तान इत्यादि कृतियाँ संग्रहणीय हैं। गुजराती (साप्ताहिक समाचार पत्र) की ओर से वार्षिक भेंट के रूप में

मिलने वाले उपन्यासों तथा डाह्याभाई रामचन्द्रजी द्वारा प्रकाशित मेवाड़ की ऐतिहासिक कहानियों को सुरक्षित रखने की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि वे एक साहित्यप्रेमी को भलीभाँति सुलभ हो सकें।

क्रमशः उपन्यास लेखक प्रकट होते गये और साहित्य का यह अंग परिपुष्ट होता रहा किन्तु युग आन्दोलनकारी, समर्थ उपन्यास तो गुजरात को बीस—बीस वर्ष के अन्तर से ही मिल सके हैं। सरस्वतीचन्द्र के पश्चात् दूसरा समर्थ उपन्यास सन् १९१९ ई. में प्रकट हुआ। 'गुजरात नो नाथ' के प्रकाशित होते ही गुजरात में एक नवीन ही वातावरण फैलने लगा। इस उपन्यास के लेखक के दो उपन्यास पहले प्रकाशित हो चुके थे। 'वेर नी वसूलात' पर सरस्वतीचन्द्र का प्रभाव है। 'पाटण नी प्रभुता' ने लेखक के प्रकृतिदत्त सामर्थ्य को प्रकट किया; 'गुजरात नो नाथ', के द्वारा वह सामर्थ्य दिग्विजय हो गया।

के० एम० मुंशी कहानी लेखक के रूप में 'घनश्याम' के उपनाम से प्रसिद्ध हो चुके थे। प्रथम दो उपन्यास उन्होंने 'घनश्याम' उपनाम से ही लिखे थे। 'गुजरात नो नाथ' तथा उसके पश्चात् लिखे गये उपन्यासों और कहानियों ने मुंशीजी की कीर्ति को परम उज्ज्वल कर दिया और सरस्वतीचन्द्र के लेखक गोवर्द्धनराम त्रिपाठी के पश्चात वे ही समर्थ कलाकार तथा साहित्यसर्जक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

मुंशीजी की भाषा साधारण पढ़े लिखे नगरनिवासी की है। वह छोटे छोटे काव्यों में विचारों को व्यक्त कर देती है;— साधारण व्यवहारों में सदा प्रयुक्त होने वाली है! वह सरल होने पर भी बलवती तथा निर्बाध भावावेग वाली है। आडम्बर

हीन तथा सरल होने के कारण सहसा ही पाठकों को लुभा लेती है।

भाषा के इस आकर्षक गुण के अतिरिक्त मुंशीजी के उपन्यासों में वैसा ही दूसरा गुण,-कार्यवेग, कार्योत्साह तथा कार्य सिद्धि का है। कथारस को अखण्ड प्रवाहित रखने के लिये घटनाचक्र को निरन्तर गतिशील रहना चाहिये और मूलकथा के साथ उसका एकरस होना आवश्यक है। मुंशीजी के उपन्यासों में कार्यपरम्परा का यह चक्र पूर्वापर ऐसे गाढ़ सम्बन्ध से बँधा हुआ रहता है और इतने जोश के साथ घूमता रहता है कि उसमें मन्दता तथा निष्क्रियता का तनिक भी प्रवेश नहीं हो पाया है। वस्तुसंकलन की उत्कृष्ट शक्ति के कारण ही यह गुण उनमें आया है।

चरित्र चित्रण तथा प्राकृतिक वर्णन में भी मुंशीजी की कला उच्च कोटि की है। पात्रों का परिचय देने वाले प्रसंग वे बड़ी ही कलापूर्ण रीति से उपस्थित करते हैं। अधिकांश में,-पात्र ही अपने विचारों तथा व्यवहार के द्वारा पाठकों से स्वतः परिचित हो जाते हैं। मुन्शीजी प्रकृति के सौन्दर्य को एक कलाकार की दृष्टि से देखते हैं। उनमें सच्चे तत्त्वों को ग्रहण करके उन्हें शब्दों द्वारा पूर्णतया प्रतिबिम्बित कर देने की कला है। समयानुसार प्रसंगों का चित्रण करने की सूक्ष्म विवेचक बुद्धि है। इसीलिये उनके उपन्यास एकदम लोकप्रिय हो जाते हैं।

उनके उपन्यासों की 'वस्तु' एवं संयोजनायें सर्वथा नवीन तथा विविधता से भरपूर हैं; अतः ज्यों-ज्यों उनके उपन्यास प्रकट होते गये त्यों ही त्यों वे अत्यन्त यशस्विता प्राप्त करते गये।

नवयुग के निर्माता के रूप में मुन्शीजी में अनेकों अनुपम गुण हैं। उनके दो गुण तो सहसा ही ध्यान आकर्षित कर लेते

हैं। उनमें से पहला गुण,-युवकों की मनोदशा का सफल चित्रण करना है। युवक-हृदय की पहचान मुन्शीजी को प्रकृति से ही सिद्ध है। युवकों को वशीभूत कर लेने में मुन्शीजी का यही गुण विजयी हुआ है। इसी प्रकार का उनका दूसरा गुण,-गुजरात की अस्मिता (अहं भाव) का धधकता हुआ ज्वालामुखी है। गुजरात को अपनी अस्मिता (अहं) का पहला बोध कराने वाले कवि नर्मदाशंकर हैं। उनके पश्चात् उस मनोभावना पर छाई हुई राख को उड़ा कर अस्मिता-अंगार को फिर से सतेज करने वाले रणजीतराम हुए! गुजरात की इसी अस्मिता को झंझावात की भाँति सर्वत्र ही फैला देने वाले व्यक्ति कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (के. एम. मुन्शी) हैं! उनमें यह भावना रणजीतराम के सहवास से जागृत हुई हो या स्वतन्त्र रीति से,-किन्तु वह बहुत ही बलवती है।

जिस समय उपन्यास-जगत में मुन्शीजी परम यशस्विता प्राप्त कर रहे थे उसी समय एक अन्य लेखक उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण कर चुके थे। उस समय उपन्यासों में अधिकतर राजा-महाराजाओं, धनपतियों एवं विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों की बातें ही लिखी जाती थी;-जन साधारण के सम्बन्ध में बहुत ही कम उल्लेख रहता था। यदि कोई सामाजिक उपन्यास लिखा जाता तो उसमें उच्च श्रेणी के व्यक्तियों को ही स्थान दिया जाता था। इस स्थिति में मुन्शीजी के परवर्ती उपन्यासकारों ने आमूल परिवर्तन कर दिया। रमणलाल वसन्तलाल देसाई ने जयन्त, शिरीष, कोकिला, हृदयनाथ, उपन्यासों में मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन का चित्रण किया है किन्तु 'दिव्यचक्षु' के प्रकाशित होते ही सबका ध्यान उसके रचयिता की ओर आकर्षित हो गया। 'दिव्यचक्षु' में सम्पन्न वर्ग का चित्रण है किन्तु जन-साधारण तथा राष्ट्रीय विचारों के आन्दोलनों के साथ उसका

ऐसा सामञ्जस्य कर दिया है कि अब तक प्रकाशित हुए उपन्यासों में वह अपना अलग ही स्थान रखता है। रमणलाल के परवर्ती लेखक झवेरचन्द मेघानी तथा अन्य लेखकों के उपन्यासों में अधिकतर गुजराती जीवन, शहर के भद्र पुरुषों तथा ग्रामीण जनता का चित्रण किया गया है और दैनिक जीवन के व्यवहारों से घटनासूत्र बुने गये हैं जिससे ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो पाठक अपने दैनिक जीवन में ही घूम रहा है।

रमणलाल कथासूत्र तथा रसपोषण को अक्षय रखने में मुन्शीजी के समान ही कुशल कलाकार हैं। विभिन्न प्रकार के सामाजिक स्तरों से कथानक चुनने के कारण रमणलाल ने पाठकों की बहुत बड़ी संख्या प्राप्त की है। उनके उपन्यासों के घटनाचक्रों-पात्रों, कथोपकथनों तथा रचना-पद्धति में बहुविधता होने के कारण वे (उपन्यास) बहुत अधिक प्रचार पाये।

रमणलाल के घटनाचक्रों में वेशपरिवर्तन, चमत्कार तथा अघटित परिणाम घटित करने की आश्चर्यजनक रीति स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है। ऐसे प्रसंगों को कितनी ही कुशलता से क्यों न चित्रित किया जाय, कला-विधान में मन्दता आये बिना रहती ही नहीं है।

रमणलाल "दिव्यचक्षु" के द्वारा प्रसिद्ध हुए। 'भारेलो अग्नि', पूर्णिमा, छायानट इत्यादि अनेकों उपन्यासों के द्वारा उन्होंने अपनी कीर्ति तथा प्रतिष्ठा को स्थिर रखकर आगे बढ़ाया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो 'जय सोमनाथ' लिख कर मुंशीजी अपना लेखन कार्य समाप्त कर देना चाहते हैं किन्तु रमणलालजी की सर्जनशक्ति अभी और भी उत्तम कृतियाँ प्रस्तुत कर सकेगी, ऐसी आशा है।

रमणलाल के कुछ ही समय पश्चात् हमें दूसरे समर्थ उपन्यासकार और मिल चुके हैं। वे हैं झवेरचन्द मेघाणी। 'सौराष्ट्र नी रसधार' के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले मेघाणीजी प्राचीन कहानियाँ, लोक कथायें, सन्त महात्माओं की गाथायें कहते हुए धीमे-धीमे उपन्यासकार बनते गये हैं। वे लोक साहित्य के परम रसिक तथा अभ्यासी थे। इधर, देश में जनपद विकास का वातावरण परिव्याप्त था। मेघाणीजी के लिये यह स्वर्ण सुयोग था। वे ग्रामीण जनता तथा शहर में आकर बस गये ग्रामजनों के प्रति ममता रखने लगे और उनके उपन्यासों के पात्रों में वही ममत्व मूर्त रूप से प्रकट हुआ है। काठियावाड़ के प्राचीन इतिहास तथा गुजरात के प्राक् कालीन वातावरण को वर्तमान पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करके मेघाणीजी ने अच्छा यश अर्जन किया है। उन्होंने सांसारिक तथा सामाजिक जीवन, प्रमुखतया शहर में रहने वाले मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के जीवन का चित्रण किया है। ग्रामीण मनुष्यों का जीवन शहर में आकर कैसा परिवर्तित हो जाता है,–यह बतलाते हुए उनके दैनिक जीवन का यथार्थ चित्रण करने में मेघाणीजी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है; और इसीलिये उनके उपन्यास इतने लोकप्रिय भी हुए हैं। 'वेविशाल' (सगाई), 'तुलसीक्यारो', 'प्रभु पधार्या' तथा तत्कालीन सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाले अन्य उपन्यासों के द्वारा उन्होंने हमारे उपन्यास-साहित्य में सुन्दर अभिवृद्धि की है।

काठियावाड़ के प्राचीन इतिहास तथा लोक साहित्य के रसिक गुणवन्त आचार्य मेघाणीजी के समान ही समर्थ लेखक हो सकते थे परन्तु कुछ तो नैसर्गिक प्रतिभा की न्यूनता से तथा मुख्तया शिक्षा एवं प्रयत्न के प्रति असावधान रहने से वे हमारी इस आशा को परिपूर्ण नहीं कर सके। उनकी 'त्रिलोचन', 'भूतकाल

नो पड़छायो', 'सोरठी सन्ध्या' इत्यादि रचनाओं में कुछ प्रतिभा अवश्य झलकी किन्तु वे न उसे विकसित कर सके न स्थिर ही रख सके। उन्होंने कच्छ-काठियावाड़ के इतिहास का अनुसन्धान करके श्रमसाध्य जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् विभिन्न कहानियाँ लिख कर अपनी प्रतिभा तथा उत्साह का अच्छा परिचय दिया है; किन्तु बाद में उन पर समाजवाद का रंग कुछ अधिक चढ़गया। उन्होंने समाज के निम्नस्तर के व्यक्तियों पर लिखना पसन्द किया; किन्तु उनकी उन कृतियों में उच्चाशय की न्यूनता, संस्कारी, उदार आदर्श, सुन्दर भावनाओं की कमी होने से वे कृतियाँ रुचिपूर्ण न बन सकीं। इतना ही नहीं, जिस युग में समाजवाद के सपने भी नहीं थे उस युग में उस (समाजवाद) के आचार विचारों के निरूपण, आरोपण से उनकी कहानियों में कृत्रिमता एवं अस्वाभाविकता का आ जाना अनिवार्य था। इन दोषों के होते हुए भी गुणवन्त आचार्य के उपन्यासों में से 'दरिद्र नारायण', 'इनकिलाब' 'दरियालाल' तथा 'देशदीवान' अवश्य ही सुन्दर एवं यशस्वी रचनायें हैं।

प्रारंभिका के पाठकों के लिये उपरोक्त उपन्यासकारों का परिचय ही पर्याप्त है। यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित है कि उपन्यास केवल इतने ही नहीं लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेकों उपन्यासकार हो गये हैं। अधिकांश मनुष्य उपन्यास के प्रेमी होते हैं; इसलिये उनका सर्जन भी पर्याप्त परिमाण में होता है; परन्तु उनमें से कई उपन्यास निम्न कोटि के ही,–बरसाती मेंढकों की भाँति अस्थायी होते हैं।

इस प्रकरण में केवल चार-पाँच उपन्यासकारों का ही परिचय दिया गया है। श्रेष्ठतम उपन्यासकार केवल दो-तीन ही हैं:–(१) गोवर्द्धनराम माधवराम त्रिपाठी (२) कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी तथा (३) रमणलाल वसन्तलाल देसाई।

मेवाणीजी में उपन्यासकार के योग्य अनेकों गुण होने पर भी उन्होंने अपने साहित्य का धरातल निम्न वर्ग से चुना। इसीलिये उनके उपन्यास सुन्दर तथा रसपूर्ण होने पर भी साहित्यिक रचनाओं के समान उच्चता प्राप्त नहीं कर सके। गुणवन्त आचार्य प्राचीन इतिहास, वर्तमान लोकवाद तथा समाजवाद का सम्मिश्रण करके सुन्दर कथानक उत्पन्न कर सकते हैं,—इतने ही यश के वे भागी हैं; अन्यथा उनके उपन्यासों में भाषा, संस्कार, लेखन शैली के प्रति उपेक्षा होने के साथ ही साथ 'उद्देश', का अभाव भी है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में से विरल ही साहित्यक्षेत्र में प्रवेश पा सकने के अधिकारी हैं।

गुजराती में अनेकों उपन्यास लिखे जा चुके हैं। उन सब का अध्यन करने के पश्चात् उन पर एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखना ही अभीष्ट है। मणिभाई तन्त्री नामक एक सज्जन ने इस प्रकार का प्रयास किया भी था। हमारी यही सद्भावना है कि गुजराती उपन्यास-साहित्य का इतिहास किसी यशस्वी लेखिनी से शीघ्र ही लिखा जाकर प्रकाश में आवे।
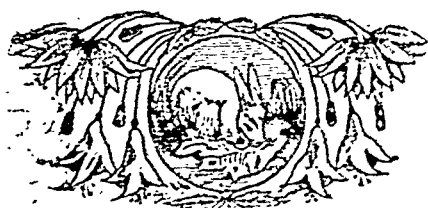
प्रकरण ८,—कहानी

गुजराती साहित्य में उपन्यास तथा कहानियों का समावेश अंग्रेजों के साहचर्य के कारण हुआ है। साहित्य के इन अंगो से गुजराती-साहित्य- देह भली भाँति पुष्ट हुआ है। ये अंग सर्वथा नवीन प्रकार के हैं अतः इनकी व्याख्या एवं कलाविधान के सैद्धान्तिक नियमों के लिये अधिकतर अंग्रेजी-शास्त्रीय-दृष्टि को ही प्रामाणिक माना जाता है। भाषा साहित्य के अध्येताओं के लिये अंग्रेजी साहित्य शास्त्र का अध्ययन अब आवश्यक हो गया है; अतः उपन्यास तथा कहानियों के प्रयोजन, संयोजन, कला—विधान इत्यादि के लिये अंग्रेजी शास्त्र के मन्तव्यों को समझने-समझाने की आवश्यकता है। किन्तु 'प्रारंभिका' के पाठकों के लिये उक्त प्रकार की गहराई में न जाकर केवल संकेत मात्र किया गया है।

मनुष्यस्वभाव में कहानी सुनने का मोह नैसर्गिक ही है और इसीलिये छोटी-बड़ी काहानियाँ प्राचीन काल से ही कही, सुनी तथा लिखी जाती रही हैं। संस्कृत में गुणाढ्य की कहानियाँ, कथा सरित्सागर, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि विपुल साहित्य है। गुजराती में भी छोटी-बड़ी कहानियाँ प्राचीन काल से ही लिपिबद्ध होती आई हैं। बड़ी कहानियों में उपकथाओं के रूप में छोटी कहानियों का भी समावेश होता आया है।

कहानियाँ लिखने का हेतु उपदेश देना, मनोरंजन करना, मानव-प्रकृति के गुणदोष प्रकट करना, संसार में घटित घटनाओं

के द्वारा होने वाले हानि-लाभ बतलाना इत्यादि है। छोटी-छोटी कहानियों में मनोरंजन करने या उपदेश देने के हेतु से छोटे-छोटे मनोरंजक चुटकुलों का भी समावेश कर दिया जाता है और स्वतन्त्र रीति से भी चुटकुले लिखे जाते हैं। ऐसी कहानियों तथा चुटकुलों मे धीरे धीरे कला का स्वरूप प्रविष्ट होता गया और कहानी का स्वरूप विकसित होकर निश्चित् आकार धारण करने लगा।

आज जिसे हम **कहानी** कहते हैं उसका पूर्व रूप ऐसी ही छोटी—छोटी कहनियाँ थीं। मासिक पत्रों तथा साप्ताहिकों में इसी प्रकार की कहानियाँ प्रकाशित होती थीं।

इन कहानियों में अद्भुत तथा चमत्कारपूर्ण प्रसंगों का समावेश करके कथा-रस को अधिक रुचिकर तथा आकर्षक बनाने के प्रयत्न होते गये। धीरे धीरे कलाविधान पर भी लक्ष्य केन्द्रित होता रहा। "समालोचक" में मुन्शीजी की 'वार्तायें' कहानियों के समस्त गुणों से युक्त थीं परन्तु प्रकट रूप से कहानी (नवलिका) नाम तो धूमकेतु की कृतियों के प्रकट होने के साथ ही प्रचारित हुआ। यदि भाषान्तर की गिनती न करें या साधारण कहानियों के संग्रह पर ध्यान न दें तो कहानी के प्रथम लेखक के रूप में **मलयानिल** की गणना होनी चाहिये। उनका कहानीसंग्रह बहुत ही विलम्ब से प्रकाशित हुआ। मलयानिल की कहानियाँ मासिक पत्रों में ही बिखरी पड़ी रहीं। इसके अतिरिक्त अल्पायु में ही दिवंगत हो जाने के कारण वे भुला दिये गये हैं। कहानी के प्रथम लेखक न होने पर भी कहानी-साहित्य के प्रारंभ के साथ धूमकेतु (जन्म सन् १८९२ ई०) का ही नाम जुड़ गया है।

कहानी को स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत करने वाले धूमकेतु ही हैं। मानव-स्वभाव में निहित भिन्न भिन्न कोमल भावों का निरूपण

धूमकेतु की कहानियां में औचित्य तथा सरसता के साथ हुआ है। धूमकेतु की कहानियाँ कलाकृति का सुन्दर नमूना हैं।

मुन्शीजी की कहानियाँ मनुष्य स्वभाव की मूर्खता भरी अहंता, अवाँछनीय आत्मगौरव, छुपी हुई अधमता, व्यावहारिक हास्यजनक विचित्रता जैसी अपूर्णता तथा त्रुतियाँ बतला कर व्यंग तथा उपहास की बौछारें करती चलती हैं जब कि धूमकेतु की कहानियाँ भावमय वातावरण खड़ा करके पाठक को चिन्तनप्रेरक विचारों में लीन कर देती है अथवा आनन्ददायक कल्पना-लोक में विचरण कराती है। धूमकेतु के पात्रों का चुनाव विशालतर क्षेत्र से हुआ है। ग्रामीण जनता, अर्द्धशिक्षित या अल्पशिक्षित समुदाय, नगर निवासी होने पर भी निम्न स्तर में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति धूमकेतु के पात्रचयन का क्षेत्र हैं। इतना होने पर भी धूमकेतु के पात्रों के संस्कारों एवं उनके लालन-पालन की पद्धति पर शहरी वातावरण का ही प्रभाव है।

दूसरे सफल कहानी लेखक रामनारायण पाठक "द्विरेफ" हैं। उनकी कहानियाँ मानसशास्त्र की गुत्थियाँ बतलाने तथा उन्हें सुलझाने के लिये मनुष्यबुद्धि के प्रयत्नों का स्वरूप समझाने के हेतु से लिखी गई जान पड़ती हैं। अधिकतर पात्र नगर-निवासियों तथा सभ्य समुदाय से ही चुने गये हैं। ग्रामीण जनता से भी पात्र लिये गये हैं किन्तु वे अधिकांशतः नगर निवासी ही हो गये हैं। कहानियों में ग्रामीण वातावरण या वर्णन क्वचित् ही मिलता है।

ग्रामीणों तथा ग्रामजीवन का सीधा परिचय प्राप्त करके ग्रामीण वातावरण खड़ा करने में मेघाणीजी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। मेघाणीजी ने तीन-चार विभिन्न प्रकारों की कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने संसार के चित्रपट पर प्रदर्शित की हुई कृतियां

में से श्रेष्ठ कृतियाँ चुन कर, उन्हीं के समान सर्वदेशीय स्वरूप वाली अनेकों सुन्दर कहानियाँ गुजराती पाठकों को भेंट की हैं। इतिहास में अवगाहन करके, इस अलत एवं विशाल सागर की अनेकों रत्नकणिकाओं में प्राक्कालीन रूप रंग चित्रित करते हुए उन्होंने बहुतसी कहानियाँ लिखी हैं जिससे यह प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है कि शौर्य, प्रेम, करुणा, उदारता, आत्मत्याग त्यों ही छलकपट, तुच्छता इत्यादि मनुष्य मात्र में किस रूप में विद्यमान रहते हैं; ग्रामीण जनता ने मानव-सुलभ कैसे गुणावगुण हैं तथा संसार और समाज में राग-द्वेष, सुख दुःख कैसी विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं!

काठियावाड़ के इतिहास को आधार बना कर गुणवन्त आचार्य ने कतिपय रसभरी कहानियाँ लिखी हैं तथा जीवन की विविधरंगी समस्याओं के अनुभव से स्फुरणा पाई हुई कतिपय कहानियाँ लीलावती मुंशी ने भी लिखी हैं।

कहानी साहित्य अब ठीक मात्रा में प्रकट होता है। कथा-कहानियों के लेखक प्रचुर मात्रा में तैयार हो रहे हैं यह संतोष की बात है। इस साहित्य की अभिवृद्धि आवश्यक भी है और इष्ट भी। अन्य प्रकार के साहित्य की अपेक्षा कहानी-साहित्य के प्रति अधिक मोह रहना स्वाभाविक है। कहानी पढ़ने की अभिरुचि स्वाभाविक है। शहर के भद्र मनुष्यों की शिक्षित जनता के लिये समय काटने के साधन रूप में कहानियाँ बहुत उपयोगी तथा सहायक सिद्ध होती हैं इसलिये इनका विक्रय भी अच्छा होता है. किन्तु कहानी लेखक यह भली भाँति से समझलें कि वे कहानी के द्वारा परोक्ष रीति से मिलने वाली शिक्षा की उपेक्षा न करें और लोभ में पड़, अल्प शिक्षित मनुष्यों को भी प्रसन्न करने के हेतु से केवल कहानी के उठान को केन्द्र बना कर निरी निकम्मी

कहानियाँ भी न लिखें। इस भाँति से लोगों की बुद्धि को भ्रमित करके कुमार्गगामी बनाना भारी देशद्रोह है।

एक कहानीकार को कथा रस तथा भावनिरूपण की वास्तविकता के उपरान्त विशिष्ट उपदेश, अज्ञान-दूरीकरण जैसे उन्नत हेतु से ही प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। प्रत्येक कहानी किसी विशिष्ट मन्तव्य को मूर्त करने, या किसी प्रसंग अथवा वातावरण का अनुभव प्रत्यक्ष करने के लिये ही लिखी जानी चाहिये। सच्चा कर्तव्य पालन करने वाला कहानी लेखक वही कहा जा सकता है जो अपने पाठकों को निश्चित् विचार करने की प्रेरणा दे एवं उनके ज्ञान तथा मनोभावों पर कल्याणकारी प्रभाव डाले। और, इस प्रकार की मान्यता रखने वाले व्यक्ति ही सच्चे साहित्य-निर्माता कहे जाते हैं। रणजीतराम (सन् १८८२-१९१७ ई०) तथा राममोहनराय देसाई (जन्म सन् १८७३ ई०) इसी शुभ उद्देश से प्रेरित हुए थे। यद्यपि रणजीतराम ने आठ-दस कहानियाँ ही लिखी हैं तथापि प्रत्येक कहानी की पृष्ठभूमि में रणजीतराम के मन्तव्य एवं पाठकों को शुभ-मार्गगामी बनाने की लगन स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। 'आनद अनेरूपाँ दे', 'दौलत' 'मास्टर नन्दनवनराम' इत्यादि प्रत्येक कहानी में रणजीतराम की भावना, कल्पना, गुजरात के लिये चिन्ता,-पाठकों पर गहरा प्रभाव डालते हैं राममोहनराय की 'रसीली वार्ताओ' में जीवन के अनेकों गूढ़ प्रश्नों की सुलझाने की चिन्ता दृष्टिगत होती है।

कहानी लेखन में धीरे धीरे भिन्न भिन्न प्रयोजन स्वीकृत होते गये। केवल कथारस से पाठक को मुग्ध करके क्षण भर आनन्दित करने, संसार के भिन्नभिन्न अनुभवों से अवगत कराने के हेतु से अभी-अभी कथा-कहानियों का प्रणयन होने लगा है। वर्तमान में गुलाबदास ब्रोकर ने युवकों की मनोदशा चित्रित करने

एवं व्यापारियों की दूक्षता तथा आचार-क्षुद्रता प्रकट करने के लिये कहानियाँ लिखी हैं।

डा० प्राणजीवन मेहता ने डाक्टरी धन्धे के अनुभवों के आधार पर कहानियाँ लिखी हैं। इस प्रकार अब (वर्तमान में) कहानी-साहित्य अत्यन्त आकर्षित हो गया है।

कहानी-तत्त्वों से रहित होने पर भी स्वरूप के योग्य ही कहानी का आकार धारण करके हास्यविनोद या परिहास के लिये छोटी-मोटी बातों या प्रसंगों के द्वारा विनोदी हास्य अथवा स्थूल हास्य उत्पन्न करने वाला साहित्य भी आजकल निर्मित होने लगा है।

ऐसे साहित्य का प्रारंभ रमणभाई ने किया है। 'हास्य-मन्दिर' के लेखों में तथा 'नवी ईसपनीति' में छोटी बड़ी कहानियों के द्वारा नर्म हास्य तथा स्थूल हास्य का स्वरूप सर्जन पाया है। हास्यमय प्रसंग उपस्थित करने में रमणभाई अधिकतर विरोधी स्थिति से मुठभेर, असंभवित विचित्रताओं की कल्पना, प्रकृतिदत्त निर्बलता से मनुष्य में दृष्टिगत होने वाली हीनता, अथवा लुच्चे लफंगे स्वार्थी मनुष्यों के विचार, व्यवहार की अच्छाइयों बुराइयों को आधार बनाकर हास्य प्रसंगों की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

इसके विपरीत,-धनसुखलाल मेहता ने दैनिक जीवन के प्रवाह में प्रवाहित विनोदी हास्य की सरणि को पहचाना और उसके आधार पर विनोदात्मक साहित्य का सर्जन करना प्रारंभ किया। गुजरात ने इस बात को देर से समझा कि सामान्य दिखाई देने वाले प्रसंगों में भी कैसा मार्मिक हास्यतत्त्व समाया रहता है। इसीलिये धनसुखलाल मेहता का सन्मान बहुत विलम्ब से हुआ। "वार्ता विहार", 'विनोद विहार', 'भूत ना भड़का', 'हुँ' सरला अने मित्र-मंडल इत्यादि संग्रह ज्यों—ज्यों प्रकट होते गये

त्यों ही त्यों धनसुखलाल की विनोदी हास्य उत्पन्न कर सकने की शक्ति खिलती गई।

धनसुखलाल की भाँति ही दैनिक जीवन से विनोदि हास्य खोज निकाल कर विनोदपूर्ण साहित्य उपस्थित करने वाले दूसरे लेखक छोटालाल डाह्याभाई जागीरदार थे। 'फई वा', 'ऊँघियुँ' में हमारे समाज के मध्यम वर्ग का जीवन चित्रित करने का अच्छा प्रयत्न किया गया है।

नर्म (विनोद) हास्य के लेखकों की भाँति ही छोटी-बड़ी कहानियों के द्वारा स्थूल हास्य का सर्जन करने वाले (१) खंधेड़िया (२) ओल्या जोशी तथा (३) मस्त फकीर ने गुजरात के मनोरंजक साहित्य में अच्छा सहयोग दिया है ! खंधेड़िया की 'नवी नवी वातो' तथा 'देवो ने खुला पत्र'; मस्तफकीर की 'हास्यभंडार' तथा 'मुक्तहास्य'; ओल्या जोशी की 'अखाड़ा नाँ पुस्तको' आदि कृतियाँ नर्म हास्य साहित्य के अध्येताओं को अवश्य पढ़ लेना चाहिये।

ऐसी विनोदभरी कृतियों में साहित्यिक गुणों से अलंकृत कृतियाँ बहुत कम हैं। केवल रमणभाई तथा धनसुखलाल की दो-चार कृतियाँ साहित्य-श्रेणी में रक्खी जा सकती हैं। रमणभाई कृत चिट्ठी, आँजणी, धनसुखलाल कृत सासूजी, बा, बीजवर कहानियों के रूप में सत्कार पाने योग्य हैं अतिसुखशंकर त्रिवेदी कृत निवृत्तिविनोद तथा साहित्यविनोद भी इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। कहानी तथा नर्म हास्य की किसी कथा में जब कहानी के योग्य कला विधान प्रविष्ट हो जाता है तब उसकी गणना 'कहानी' में अवश्य ही की जा सकती है कहानी के रूप में गिनी जाने पर भी नर्म हास्य की कृतियाँ शुद्ध साहित्य में स्थान पा सकती हैं या नहीं ?-यह एक प्रश्न ही है। कहानी साहित्य की भाँति ही नर्म

हास्य साहित्य का भी अभी-अभी अच्छा विकास एवं प्रसार हुआ है तथा इसकी लोकप्रियता भी बढ़ी है। अतः शुद्ध साहित्य की मर्यादा का निराकरण तो भविष्य के साहित्य-परीक्षकों के लिये छोड़ देना ही उचित है।

धनसुखलाल तथा जागीरदार की भाँति साधारण जीवन-व्यवहार से प्रसंगों की उत्पत्ति करते हुए, रमणभाई की भाँति विचित्रता के शिलान्यास पर लेखों का भवन निर्माण करने वाले ज्योतीन्द्र ह० दवे विचित्र बुद्धिभ्रम, स्वाभाविक अर्थ विभ्रम, वक्र दृष्टि तथा वक्र समझ से विचित्र उलझनें उपस्थित करके नर्म-हास्य तथा स्थूल-हास्य का निर्झर बहाने वाले हैं। उनकी नोंधपोथी' तथा विविध पुस्तकें विनोदात्मक हास्य साहित्य में एक भिन्न ही प्रकार की शैली प्रस्तुत करती हैं। धनसुखलाल तथा ज्योतीन्द्र दवे,-दोनों ने मिल कर 'अमे बधाँ' नामक कृति में सूरत के प्रमुख तथा गुजरात के सामान्य जीवन को विनोदात्मक रीति से चित्रित करके विनोदी हास्य-साहित्य की पुस्तकों में एक अच्छी कृति की अभिवृद्धि की है।
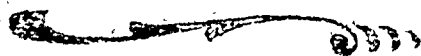
प्रकरण ९,—नाटक

उच्च कोटि के विश्वनाट्य साहित्य में संस्कृत नाट्य साहित्य का उच्चतम स्थान है। संस्कृत कवियों में श्रेष्ठतम दो-तीन कवि गुजरात काठियावाड़ में उत्पन्न हुए हैं फिर भी गुजराती में नाट्य साहित्य का तनिक भी विकास नहीं हुआ, यही आश्चर्य है! बंगाली तथा मराठी में नाट्य-साहित्य की अच्छी प्रगति हुई है किन्तु गुजराती भाषा इस सद्भाग्य से वंचित ही रही।

प्राचीन कवियों में केवल प्रेमानन्द के नाम से तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। वे उसी के लिखे हुए हैं या उसके समकालीन किसी अन्य लेखक के,-इस शंका का कोई समाधान नहीं हो पाया है। वे तीनों नाटक संस्कृत-नाटक-पद्धति पर ही लिखे गये हैं। वे चाहे प्रेमानन्द के लिखे हों या किसी अन्य व्यक्ति के;-किन्तु उत्तम साहित्यिक कृतियाँ तो वे नहीं हैं।

प्राचीन तथा मध्ययुग में नाट्य साहित्य का सर्जन होने की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। हाँ, इतना अवश्य जानने में आया है कि मध्ययुग में नाटकों का एक विकृत स्वरूप अवश्य था जो धार्मिक त्योहारों पर रामलीला इत्यादि के रूप में अभिनीत होता था।

अंग्रेजों के शासन के पश्चात् देश में जिस शान्ति का प्रसार हुआ उसके परिणामस्वरूप नगर समृद्ध होते गये और नगर वासिनी जनता को मनोविनोद के साधनों की आवश्यकता

प्रतीत हुई। परिणाम स्वरूप शहरों में नाटक खेले जाने लगे। इसका प्रारंभ बम्बई में पारसियों ने किया। प्रारंभ में इनका अभिनय उर्दू तथा हिन्दुस्तानी में होता था, बाद में गुजराती में भी इनका अभिनय होने लगा। पारसी कम्पनियाँ दूसरों के लिखे नाटक खरीद लेती थीं। गुजराती लेखकों को यह अच्छा अवसर मिला। ऐसे दो-तीन लेखक अपने नाटक लेकर कम्पनी के पास गये किन्तु कम्पनी ने उनका उचित सत्कार नहीं किया। इस घटना से वे बड़े क्रोधित हुए। अपने नाटकों की योग्यता प्रमाणित करने के लिये उन्होंने एक अलग ही नाटक कम्पनी खड़ी करके पारसी कम्पनी वालों से अपनी गलती स्वीकार करवाने का निश्चय कर लिया। वे रणछोड़भाई उदयराम दवे के पास गये और उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराया एवं सहायता की प्रार्थना की। रणछोड़भाई ने बड़े उत्साह के साथ उनकी सहायता की। उन सबने मिल कर गुजराती नाटक कम्पनी खड़ी कर ली। रणछोड़भाई इस कम्पनी को नाटक लिख लिख कर दिया करते थे। यह कम्पनी आठ-दस वर्ष तक चली। जब वह आगे नहीं चल सकी तो मूल लेखकों ने उसे दयाशंकर भाई को बेच डाला। उन्होंने उसका पुराना नाम बदल कर नया नाम 'बम्बई गुजराती नाटक कम्पनी' रख लिया। दयाशंकरभाई बम्बई में अत्यन्त लोकप्रिय नट के रूप में सुविख्यात थे। जिस नाटक में वे अभिनय करते उसके प्रेक्षक गण विपुल संख्या में नाटक देखने आते। इस कीर्ति का लाभ उठा कर दयाशंकर ने पुरानी नाटक-कम्पनी को खरीद कर बरसों तक उसे चलाया।

दयाशंकरजी भिन्न भिन्न लेखकों के पास से नाटक खरीद लेते थे। वे दो-एक अच्छे कवि, लेखक को अपनी कम्पनी के कवि तथा लेखक के रूप में रखते थे। इन नाटकों में प्रमुख ध्यान दर्शक की प्रसन्नता पर रक्खा जाने के कारण साहित्य गुण

पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। नाटकों से अर्थप्राप्ति करना ही मुख्य हेतु होने से उन्हें दर्शक-प्रिय बनाने की ओर ही लक्ष्य रहता था। नाटक के लेखक तथा मालिक यह जानते ही नहीं थे कि 'नाटक' का कार्य जनता का मनोरंजन करके परोक्ष रीति से उपदेश देना भी है। फिर भी बम्बई की जनता की रुचि को सन्तुष्ट करने में बम्बई नाटक कम्पनी ने भारी यश अर्जित किया। अभिनीत नाटकों में से कुछ अच्छे भी थे, यद्यपि आद्योपान्त अच्छे तो क्वचित् ही होंगे। 'अजयकुमारी' नाटक अवश्य आद्योपान्त सुन्दर रहा होगा क्योंकि इस नाटक में समाविष्ट कवितायें तो सभी सुन्दर कवित्वपूर्ण हैं। दुःखान्त होने के कारण वह नाटक लोकप्रिय नहीं बन सका, अतएव बहुत ही कम अभिनीत हुआ।

उस समय पूरे नाटक नहीं छापे जाते थे। इसलिये गुजराती नाटक कम्पनी द्वारा अभिनीत नाटकों का साहित्यिक मूल्य निर्धारण करने के कोई साधन इस समय उपलब्ध नहीं हैं। सन १९०८ ई० तक के लिखे गये नाटकों से श्रेष्ठ कवित्वमय संगीत चुन, चुन कर एक कविता—संग्रह 'संगीत मंजरी' तैयार किया गया था।

बम्बई नाटक कम्पनी का एक नाटक 'सौभाग्य सुन्दरी' बहुत ही अधिक लोकप्रिय हुआ। उसके मूल लेखक नथुराम सुन्दरजी कवि थे। जानकार व्यक्तियों का कथन है कि मूल कृति में अनेकों परिवर्तन, परिवर्द्धन किये गये थे।

इधर गुजराती नाटक कम्पनी की आय बढ़ चली अतः अन्य लोगों का झुकाव भी कम्पनी खड़ी करने की ओर हुआ। मूलजी आशाराम ने 'मोरवी आर्य सुबोध नाटक कम्पनी' की

स्थापना की। उनके भाई बावजी आशाराम कम्पनी के लिये नाटक लिखते थे। काठियावाड़ में उक्त कम्पनी ने खूब पैसा कमाया इसलिये वह धीरे धीरे गुजरात तथा बम्बई भी जाने लगी। बावजी के बहुत से नाटक पूरे ही छपे हैं। लोकरंजन करने के अतिरिक्त उनमें अन्य कोई विशिष्ट गुण नहीं हैं।

मोरवी नाटक कम्पनी के चल निकलने पर बाँकानेर निवासी दो त्र्यम्बक—बन्धुओं ने भी ऐसा ही साहस किया। (उन्होंने भी कम्पनी खोली)। वे प्रताप, शिवाजी, हलामण, जेठवा इत्यादि धीर वीर पुरुषों, की जीवनियों के आधार पर नाटकों का अभिनय करते थे। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयों ने भक्त-जीवन के नाटक दिखलाने का विचार किया। नृसिंह तथा मीरा,-ये दो नाटक खेले गये। नरसिंह मेहता का नाटक जनता को इतना प्रिय लगा कि जो लोग नाटक नाम से ही घृणा करते थे तथा कभी भी देखने नहीं जाते थे वे भी उस नाटक को देखने के लिये गये। ग्रामीण मनुष्य, वृद्ध स्त्रियाँ, धर्म पर श्रद्धा रखने वाले स्त्री-पुरुष नरसिंह मेहता के दर्शन करने के लिये नाटक देखने जाते थे। बारम्बार भक्त नरसी (नरसिंह मेहता) का अभिनय करने वाले त्र्यम्बकलाल पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि कुछ समय पश्चात् ही वे स्वयं नरसी मेहता बन गये। नाटक-कम्पनी को तिलांजलि देकर वे भक्तजीवन में ही तन्मय हो गये।

सौभाग्य सुन्दरी के लेखक नथुरामजी ने भी एक नाटक-कम्पनी खड़ी की थी। वे स्वयं ही उसके लिये नाटक लिखते थे। वे कवि थे। खड़ी बोली, व्रजभाषा तथा साहित्य का उनका अच्छा अध्ययन था। वे काठियावाड़ की दो-तीन रियासतों के राजकवि भी थे। उनकी कविता 'दलपत चरण' की थी अतः सामान्य

पाठकों में इसका अच्छा प्रचार था। उनके नाटकों में आये गीतों में 'कवित्व' अच्छे परिमाण में हैं।

नथुरामजी के नाटकों की अपेक्षा डाह्याभाई के नाटक अधिक लोकप्रिय तथा उच्चकोटि के साहित्यिक गुणों से अलंकृत हैं और इन नाटकों का अभिनय भी खूब हुआ है। डाह्याभाई में नूतन शिक्षा के संस्कार थे। वे स्वयं अध्यापक थे। जैनसिद्धान्तों में उनकी भारी श्रद्धा थी। नाटक कम्पनियों का वातावरण सुधारने के हेतु से ही उन्होंने नाटक का धन्धा अपनाया था। उनके पात्र विकास तथा पात्र–आलेखन में कलामय कुशलता थी एवं लोकरंजन करने की अच्छी निपुणता थी; अतः उनके सभी नाटक दर्शकों को प्रिय लगते थे। उनके अनेकों गीत साहित्यिक रचनाओं में स्थान पाने योग्य हैं। डाह्याभाई की नाटक-कम्पनी ने कालचक्र के खूब अनुभव प्राप्त किये हैं। अच्छे अच्छे नाटक अभिनीत करने की उसकी प्रतिष्ठा आज भी पूर्ववत् स्थिर है। सन् १९४२ ई. में वड़ीलो ने वाँके नामक नाटक से प्रभुराम द्विवेदी नामक इस कम्पनी के एक कवि की खूब ही प्रसिद्धि हुई। प्रभुराम के अन्य तीन-चार नाटकों की भी दर्शकों ने पर्याप्त प्रशंसा की।

रंगमंच पर अभिनय करने के योग्य नाटक लिखने का प्रयत्न शिक्षितों तथा विद्वानों ने भी किया किन्तु उन्हें सफलता कदाचित् ही मिली है। वे अपने प्रयत्न में असफल ही रहे। मणिलाल नभुभाई द्विवेदी ने बम्बई नाटक कम्पनी के लिये एक नाटक लिखा था। कदाचित् इसका नाम नृसिंहावतार था परन्तु वह दर्शकों को तनिक भी नहीं रुचा। रणछोड़भाई उदयराम के कुछ नाटक पहले अभिनीत होते रहे किन्तु कालान्तर में दुनिया ही बदल गई। उनके नाटकों में से केवल 'ललिता-दुःख-दर्शक' ने अच्छी लोक-प्रियता प्राप्त की थी।

तत्पश्चात् नृसिंहप्रसाद विभाकर ने नाटक लिखना प्रारंभ किया। उनके दो-तीन नाटक दस-पन्द्रह वार अभिनीत हुए होंगे। किन्तु वे अपनी प्रवृत्ति को आगे नहीं वढ़ा सके। उनके पश्चात् गजेन्द्रशंकर पंड्या इस क्षेत्र में आगे वढ़े किन्तु वे तीन-चार से अधिक नाटक न लिख सके। उनके नाटक अन्य साधारण लेखकों जैसी ही थे। एम. ए. तक के अंग्रेजी अध्ययन तथा संस्कृत के उच्चतम ज्ञान के मधुर फल के रूप में नाट्यकृतियों को कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई।

नाटकों का जो संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है उससे अभिनीत नाटकों का पता लग गया होगा। उनमें से सच्चा कवित्व या शुद्ध साहित्यिक गुण तो किसी एकाध कृति में ही होंगे।

नाटक साहित्य का एक आवश्यक एवं आकर्षक अंग है। साहित्यसेवक नाटक लिखना भूल नहीं गये हैं। जब से नवीन प्रकाश की रश्मियाँ पड़ी हैं और नाटकों का अभिनय प्रारंभ हुआ है तभी से साहित्य सर्जकों ने भी नाटकों का प्रणयन प्रारंभ कर दिया है। नर्मदाशंकर, दलपतराम, नवलराम, इन तीनों ने नाटक लिखे हैं। दलपतराम के 'मिथ्याभिमान' नाटक में यद्यपि कोई विशिष्ट गुण नहीं है किन्तु 'जीवराम भट्ट' गुजरात में इतनी प्रसिद्धि पाये कि मिथ्याभिमान के पर्याय रूप में उसी शब्द (जीवराम भट्ट) का प्रयोग होने लगा। व्यंग्यमय पात्रों के सफल सर्जन के कारण वह नाटक स्मरणीय है। नवलराम कृत "भट्ट नुं भोपालुं" विनोदात्मक, हास्यात्मक एवं पठनीय कृति है किन्तु साहित्य में उसका स्थान नहीं। वीरमती नाटक अध्ययन करने योग्य एक सफल नाट्य कृति है किन्तु वह अभिनय करने योग्य नहीं। पात्र निरूपण, ज्ञान-चर्चा, संवाद निपुणता एवं भावों के आलेखन में उसे अच्छी सफलता मिली है।

आधुनिक युग के साहित्यकारों ने भी नाटकों की रचना की है। यद्यपि भाषांतर अधिक किये गये हैं फिर भी स्वतन्त्र कृतियाँ भी लिखी गई हैं। मणिलाल नभुभाई द्विवेदी ने मालती माधव तथा उत्तर राम चरित का अनुवाद किया है। 'कान्ता' नाटक उनकी मौलिक रचना है। हरिलाल हर्षदराय ध्रुव, बालाशंकर उल्लासराम, दौलतराम कृपाराम एवं अन्य लेखकों ने भी नाटकों का प्रणयन किया है किन्तु उनमें स्थायित्व नहीं है।

संस्कृत के कई नाटक गुजराती में अनुवादित हुए हैं। भवभूति के दो नाटकों का अनुवाद मणिलाल नभुभाई द्विवेदी ने तथा 'मृच्छ कटिक' का भाषान्तर बालाशंकर कंथारिया ने किया है। भास, कालिदास तथा श्रीहर्ष के लगभग सभी नाटक गुजराती में अनूदित हो चुके हैं। भाषान्तरकारों में उच्चतम यश की प्राप्ति केशवलाल हर्षदराय ध्रुव को प्राप्त हुई है। कालिदास के सर्वश्रेष्ठ नाटक शाकुन्तल का यथार्थ भाषान्तर करने में कोई भी लेखक समर्थ नहीं हो सका है।

मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस, वेणी संहार तथा अन्य अनेकों अच्छे अच्छे संस्कृत नाटक गुजराती में रूपान्तरित हो चुके हैं। संस्कृत से भाषान्तर करने में केशवलाल हर्षदराय ध्रुव का सहयोग सब से अधिक तथा महान है। भाषान्तरकार में भी सर्जनशक्ति, कवित्त्व तथा नैसर्गिक साहित्यिक गुणों का होना आवश्यक है,- यह बात हम के० ह० ध्रुव के भाषान्तरों से स्पष्ट समझ सकते हैं।

संस्कृत नाटकों का गुजराती में स्वाभाविक सरलता से अनुवाद हो सकता है। इसीलिये संस्कृत नाटक पर्याप्त परिमाण में अनुवादित हुए हैं। अंग्रेजी का विस्तृत अध्ययन होने पर भी आज तक भी अंग्रेजी के श्रेष्ठ नाटक गुजराती में नहीं आ पाये हैं। (हाँ, हंसा मेहता ने हेम्लेट का अनुवाद अवश्य किया है।)

फिर फ्रैंच, ज़र्मन, अथवा अन्य यूरोपीय भाषाओं से सीधे भाषान्तर की तो बात ही क्या चलाई ? हाँ, उसमें एक अपवाद अवश्य है। ईश्वरभाई पटेल ने सीधे जर्मन भाषा से 'विलहेम' नामक नाटक का गुजराती–भाषान्तर किया है।

अन्य भारतीय भाषाओं, (बंगाली, मराठी, हिन्दी) के नाटक भी अनुवादित हुए हैं। मेघाणीजी ने शाहजहाँ तथा प्रतापराणा नाटकों का बंगला से भाषांतर किया है, जो विशेष द्रष्टव्य हैं। ये दोनों नाटक स्वतन्त्र रचनाओं के समान ही सुन्दर एवं आकर्षक बन पड़े हैं। डी० एल० राय तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक गुजराती में अनुवादित हो चुके हैं। टैगोर कृत चित्रा * का अनुवाद महादेव देसाई ने चित्रांगदा * के नाम से किया है। मेघाणीजी के शाहजहाँ तथा प्रतापराणा के भाषान्तरों की भाँति ही चित्रांगदा भी सफल एवं सुन्दर साहित्यिक कृति है।

भाषान्तरों में किसी किसी रचना के श्रेष्ठ होने पर भी अभी तक नाट्य साहित्य की स्थिति असन्तोषजनक ही है। मौलिक रचनायें विरल ही हैं। मणिलालजी की 'कान्ता' के पश्चात् रमणभाई कृत 'राईनो पर्वत' *तथा नान्हालाल कृत 'जया-जयन्त*' नाट्य साहित्य में श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। यथार्थ एवं सर्वांग सुन्दर नाटक राई का पर्वत है। जया–जयन्त में तेजस्वी कल्पना, उन्नत आदर्श, आश्चर्यजनक मनोनिग्रह, अपार्थिव वातावरण, सुन्दर पात्र एवं प्रशंसनीय कलाविधान होते हुए भी, वह एक विशिष्ट

---

* 'जयाजयन्त', 'राइ नो पर्वत' तथा 'चित्रा' का हिन्दी भाषान्तर पं० गिरिधर शर्माजी नवरत्न ने किया है। चित्रा अब अप्राप्य है शेष दोनों पुस्तकें नवरत्न सरस्वती भवन; झालरापाटन से प्राप्त की जा सकती हैं।

प्रकार का काव्य-ग्रन्थ ही है। नान्हालाल ने अन्य नाटकों की रचना भी की है। विश्वगीता, अकबरशाह, नूरजहाँ, संघमित्रा सभी सुन्दर कृतियाँ हैं। साहित्यिक रचनाओं के रूप में गुणगौरव शालिनी हैं। उनकी सर्वमान्यता स्वीकृत हो चुकी है फिर भी वे नाट्यसाहित्य में अभिवृद्धि कारिणी नहीं हैं।

नाटक के रूप में राई का पर्वत सब प्रकार से सफल कृति है। गुजराती साहित्य में श्रेष्ठतम एवं स्वतन्त्र कृति तो वह अपने ढंग की एक ही है। बलवन्तराय ठाकोर कृत 'ऊगती जुवानी' एक अच्छा प्रयोग होने पर भी सर्वांग सुन्दर नाटक नहीं बन सका। मुन्शीजी के नाटक भी नाट्य साहित्य में अभिवृद्धिकारक सिद्ध नहीं हुए।

एक नाटक-लेखक में जिन जिन गुणों का होना आवश्यक है उनका दान अभी परमात्मा ने गुजरात को नहीं दिया है। नाटक का मोह अनेकों लेखकों में रहता है इसीलिये अनेकों नाटक लिखे भी गये हैं; यद्यपि उनका रचना-परिमाण पर्याप्त तो नहीं है। नाटक पहले भी लिखे गये हैं, आज भी लिखे जाते हैं और भविष्य में भी लिखे जायेंगे किन्तु कालिदास, भवभूति शेक्सपीयर तथा डी० एल० राय तो गुजरात को तभी मिलेंगे जब भगवान की पूर्ण कृपा दृष्टि हो जायेगी। तब तक तो जैसे भी साहित्यकार हमें मिलें उन्हीं का हमें सत्कार करना चाहिये।

ऐसे प्रशंसनीय प्रयत्न हुए भी हैं तथा आगे भी होते रहेंगे, यह हमारा सद्भाग्य है। चन्द्रवदन मेहता कृत 'आग-गाड़ी' अच्छा नाटक है। उन्होंने अन्य नाटक भी लिखे हैं एवं इतर लेखक भी नाटक लिख रहे हैं। अनेकों एकांकी नाटकों की रचना हुई है किन्तु वे नाटकों की अपेक्षा संवादमय कहानी जैसे लगते हैं।

नाट्यतत्त्व के रहस्य को समझाने वाली चर्चा चला कर, नाटकों के आवश्यक अंगों तथा अंशों सम्बन्धी निर्णय करने वाले लेखों की गुजराती में अत्यन्त आवश्यकता है। प्रारंभिका के पाठकों को यह पूर्णतया लक्ष्य में रखना चाहिये कि वे ऐसे साहित्य के उत्पादन के हेतु योग्य प्रवृत्ति को शीघ्र ही अपनावें।
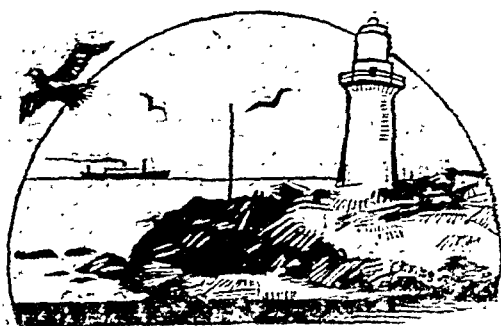
प्रकरण १०,—व्यापक साहित्य

तत्त्वभेद के कारण साहित्यिक कृतियों में भी भिन्न भिन्न श्रेणियाँ हो जाती हैं। अनेकों कृतियाँ उच्चतत्त्व समाविष्ट होने के कारण हिमगिरि के समान हो जाती हैं जहाँ तक पहुँचने वाले प्रवासी विरले ही होते हैं। श्रीगोवर्द्धनराम कृत 'साक्षर जीवन' तथा सरस्वतीचन्द्र के कुछ प्रकरण, मणिलाल नभुभाइ कृत सिद्धान्त-सार; आनन्दशंकर ध्रुव कृत आपणो धर्म, नान्हालाल कृत विश्वगीता इत्यादि साहित्य सभी की पूजा का पात्र है किन्तु उसे समझकर उसके साहित्यानन्द का रसास्वादन करने वाले मनुष्य बहुत कम निकलते हैं। कुछ साहित्य हिमगिरि के सदृश एकांकी न होने पर भी गंगोत्री, जमनोत्री, बद्री केदार, दार्जिलिंग, महाबलेश्वर या उटक-मण्ड जैसे स्थानों के समान विरले ही प्रवासियों द्वारा सेवन किया जाता है। 'सरस्वतीचन्द्र', नान्हा-लाल की अनेक कृतियाँ, बलवन्तराय कृत भणकार अखा कृत अखेगीता, व वेदान्त विषयक लेखों जैसा साहित्य पार्थिव भावों से परे ले जाकर दिव्य दर्शन कराने वाला तथा दिव्यानन्द प्रदान करने वाला होने से सभी के द्वारा प्रशंसनीय है किन्तु इसके पढ़ने वाले कम ही मिलेंगे। मुंशीजी तथा रमणलाल के उपन्यास, धूमकेतु तथा द्विरेफ की कहानियाँ, प्रत्येक व्यक्ति की मुख्य अभिरुचि के अनुकूल निबन्ध, साहित्य-चर्चा के लेख, अवलोकन आदि साहित्य पढ़ने वाले अधिक हैं। सरस्वतीचन्द्र जैसा शिष्ट साहित्य तथा उपन्यास, कहानी, काव्य, साहित्यिक वाद विवाद

जैसा सुन्दर साहित्य समाज के सुशिक्षित समुदाय में अच्छा प्रचार पाता है।

किन्तु ऐसे साहित्य के अतिरिक्त इस कोटि का साहित्य भी होता है जो समाज के उच्च-नीच, शिक्षित-अशिक्षित समुदाय में समान रूप से प्रचार पाता है। वह 'लोकनिधि' के समान देश भर में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। नरसिंह—मीरा के काव्य; प्रेमानन्द के दशमस्कन्ध, सामेरूँ, नलाख्यान इत्यादि लोकप्रिय आख्यान; अखा के छप्पा; दयाराम की गरबियाँ; प्रीतमदास के पद; धीरा-भोजा की काफी—चाबुक; दलपतराम के अनेकों काव्य; नवल--राम की गरबावली आदि साहित्य गाँवों की अशिक्षित जनता में भी व्याप्त हो रहा है। यह साहित्य 'बाजारू साहित्य' से सर्वथा भिन्न प्रकार का है; मणिकान्त—काव्यमाला के काव्य या नाटक सिनेमाओं के गाने जिस कोटि का बाजारू साहित्य है उसकी अपेक्षा भजन, कीर्तन, आख्यान, प्रभातियाँ अथवा गरबा चाबुक का साहित्य अवश्य ही उच्च कोटि का है। ऐसा साहित्य समाज के सभी स्तरों में समान रूप से व्यापक रहता है तथा साहित्यिक प्रतिष्ठा का संरक्षण करते हुए समाज को प्रेरणा देने, सदुपदेश देने तथा सन्मार्ग दिखाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। समस्त जनसमुदाय में व्याप्त हो जाने की शक्ति रखने के कारण ही ऐसे साहित्य को यहाँ व्यापक-साहित्य कहा गया है।

ऐसे व्यापक साहित्य का सर्जन करने की शक्ति प्राचीन कवियों में से किसी—किसी में उच्च कोटि की थी। अर्वाचीन लेखकों में से नवलराम तथा दलपतराम की कृतियों में व्यापक बनने की भारी क्षमता है ज्यों ज्यों संस्कृत-अंग्रेजी का अध्ययन बढ़ने लगा त्यों ही त्यों विद्वानों तथा साहित्य सर्जकों के दृष्टिबिन्दु भाँति भाँति की विकृतियों के वशीभूत होने लगे। ऐसा लगा मानो

साहित्य का अध्ययन समाज के उच्च वर्ग के भाग्य में ही लिखा है। साहित्य सर्जक भी बुद्धि तथा कल्पना के उच्च क्षेत्र में विहार करने लगे; फलतः साहित्य के अध्येता तथा उच्च साहित्य-सर्जक विशाल जनसमुदाय से अलग पड़ने लगे। भोगीन्द्रराव दीवेटिया के लेखों ने जनता तथा साहित्य के बीच की इस गहरी खाई को पाटने के लिये सेतु के समान कार्य किया है। 'सुन्दरी सुबोध' ने कई वर्षों तक ऐसे प्रयत्न जारी रक्खे। इसके पश्चात् इन्दुलाल याज्ञिक के 'नवजीवन' मासिक पत्र ने वह कार्य अपने हाथ में लिया।

मासिक पत्रों तथा साप्ताहिक पत्रों के द्वारा जनता एवं साहित्य के बीच की खाई को पाटने के प्रयत्न होते रहे। इस प्रवृत्ति में "गुजराती" साप्ताहिक ने बहुत बड़ा सहयोग दिया है। भाग्य के फेर से ज्यों ही 'गुजराती' में कुछ मन्दता आई त्यों ही महात्मा गांधी ने 'नवजीवन' को अपने हाथ में ले लिया। इन्दुलाल याज्ञिक के मासिक पत्र नवजीवन को महात्माजी ने साप्ताहिक बनाया और उसका सम्पादन कार्य उन्होंने स्वयं अपने हाथों में ले लिया। तभी से व्यापक साहित्य का नया प्रवाह प्रारंभ हुआ। महात्माजी के हिन्द स्वराज्य, दक्षिण अफ्रिका ना सत्याग्रह नो इतिहास, आरोग्य विषे विचारो * तथा 'आत्म-कथा' व्यापक साहित्य के सुन्दर आदर्श हैं। नवजीवन तथा हरिजनबंधु के मौलिक गुजराती लेख भाषा की निर्मलता, विचारों के प्रवाह, अकाट्य तर्कों, भाव की शुद्धता तथा संवेदन के उभार से सत्प्रवाह की जो धारायें बहा रहे हैं वे समग्र देश के कोने कोने में व्याप्त हो गई हैं। वे लेख इतने लोकप्रिय हो गये हैं कि नगर-निवासी, ग्राम निवासी, विद्वान, अर्द्धशिक्षित-अल्पशिक्षित जनता तथा विभिन्न प्रकार के अभिप्राय रखने वाले वर्ग के व्यक्तियों में भी समान उत्साह से पढ़े जाते हैं गांधीजी की नयानुकूल विचारधारा

तथा विचारों को व्यक्त करने की अद्भुत सरलता भरी संस्कार गूढ़ता उनके लेखों में ऐसा अद्भुत अनिर्वचनीय आकर्षण उत्पन्न करती है कि उन्हें वारम्बार पढ़ने की इच्छा होती रहती है। विचारों में मतभेद होने पर भी उनकी लेखनशैली में ऐसी मोहिनी है, भाषा तथा विचारों में ऐसा उच्च कोटि का निर्मल प्रसाद है कि उनके लेखों को उच्च साहित्यिक कृतियों के समान ही पढ़ते रहने की इच्छा बलवती हो उठती है। उच्च साहित्य में जिन-जिन गुणों का होना आवश्यक है वे सब गुण गांधीजी की रचनाओं में सर्वव्यापी हो रहे हैं। उनमें हृदय का भाव इतने प्रवल वेग से प्रकट हुआ है कि पाठक मुग्ध हो कर तन्मय हो जाता है। उनके वर्णनों में ऐसी स्वाभाविक चित्रमयता आ जाती है मानों वे किसी परम कुशल चित्रकार की तूलिका से चित्रित रेखायें ही न हों! उनके लेखों में किसी किसी समय कल्पना तथा कवित्व की ऐसी अनुपम छटा आ जाती है कि अच्छे से अच्छे कवि की रचना की अपेक्षा भी वे लेख अधिक उच्च, अधिक उन्नत, अधिक प्रसादपूर्ण व अधिक आनन्ददायी बन जाते हैं। स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में महात्मा गांधी की कृतियाँ बहुत कम हैं। उनके लेखों के 'संग्रह' तैयार कर लिये गये हैं। 'नवजीवन' में आये उनके लेख पुनः प्रकाशित हुए हैं। महात्माजी ने जब जब भी लिखा है,-हृदय के उभरते हुए मनोभावों को व्यक्त करने, अपने विचारों को जगत के समक्ष स्वच्छ, स्पष्ट भाषा में शब्दमय करने तथा मनो-मंथन को यथार्थ रूप में बतलाने के लिये ही लिखा है। उनके पवित्र उद्देश तथा निर्मल मनोभावों के कारण उनके लेखों में ऐसा आकर्षण समा गया है कि पाठकों को वारम्बार उनके लेख पढ़ने की इच्छा होती रहती है। उनके लेख संस्कारशील तथा तत्त्वपूर्ण होते हैं। कभी कभी तो वे शिष्टता की ऐसी परा कोटि पर पहुँच जाते हैं कि साधारण पाठक उन्हें समझने में असमर्थ हो जाते हैं;

फिर भी उनमें जो मार्गदर्शन, जो उत्साह-प्रेरणा, जो उन्नत विचार रहते हैं वे साधारण श्रेणी के पाठकों को भी मोहक तथा आकर्षक लगते हैं। इसीलिये उनकी कृतियाँ सभी को प्रिय लगती हैं। उनमें ऐसी अद्भुत मोहिनी है कि सर्वप्रिय होने के उपरान्त भी वे उच्च एवं शुद्ध साहित्य में गणना पाती हैं।

महात्मा गांधी का साहित्य बुद्धि तथा हृदय दोनों को प्रभावित करता है जबकि किशोरीलाल मश्रूवाला का साहित्य चिन्तन प्रधान होने से बुद्धि पर ही भारी प्रभाव डालता है। 'केलवणी ना पाया', 'गीतामंथन', 'सत्यमय जीवन' चिन्तन तथा सत्यान्वेषण के लिये मंथन करती हुई बुद्धि के परिपक्व फल हैं। 'सहजानन्द' चरित्रात्मक ग्रन्थ होने पर भी बुद्धि को विचार चक्र पर घुमाने वाला है। किशोरीलालजी की कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य हैं किन्तु जितनी व्यापक महात्मा गांधी की रचनायें हैं उतनी मश्रूवाला की नहीं। उनमें पक्षवाद नहीं है, कथा कहानी जैसा एकमार्गीयत्त्व नहीं है, वर्णन या कल्पना का सौन्दर्य नहीं है; उनमें बुद्धि को कसौटी पर कसने तथा बुद्धि शक्ति को विकसित करने योग्य बहुत कुछ है। उच्च एवं शुद्ध साहित्य के रूप में वे कृतियाँ अवश्य ही स्वीकार करने योग्य हैं।

महात्मा गांधी ने अनेक व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। उनमें से अनेकों सच्चे बहुमूल्य रत्न देश को प्राप्त हुए हैं। इस रत्नभंडार में से तीन-चार रचनाकार हमें भी मिले। जैसे मश्रूवाला बुद्धि को कसौटी पर कसने वाले हैं वैसे ही काका कालेलकर बुद्धि, हृदय तथा संस्कारों की कसौटी करने और उन्हें विकसित करने वाले हैं। उनका अध्ययन बहुत विशाल है। वे अपने ज्ञानभण्डार से भिन्न भिन्न प्रकार की ज्ञान सामग्री ऐसे सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उनकी सभी रचनायें अत्यन्त

रसपूर्वक तथा आनन्दपूर्वक पढ़ी जाती हैं। उनका गद्य सरस्वतीचंद्र के गद्य के समान संस्कार प्रचुर तथा उच्च कोटि का होने पर भी उसकी अपेक्षा अधिक सरल व सुगम है; नवलराम के सरल, प्रवाहपूर्ण गद्य की अपेक्षा अधिक अलंकृत तथा अधिक मनोगम है। कालेलकर का गद्य मधुर है, मनोरम है! सीधी सादी छोटी-छोटी वाक्यावलियों से युक्त होने पर भी श्रवणमधुर, अवाध प्रवाहयुक्त, रोचक तथा प्रसादपूर्ण है। जब हम गुजराती के गद्यस्वामियों को क्रमबद्ध करने बैठते हैं तब महात्माजी तथा गोवर्द्धनराम के पश्चात् कालेलकर को ही क्रमबद्ध करने को बाध्य होते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि किशोरलाल की रचनायें तत्त्वचिन्तन प्रधान होने से उनमें विचार-भार तथा गंभीर आलोचन समाविष्ट हो गये हैं; अतः वे व्यापक नहीं बन सकतीं। कालेलकर की कृतियों में विचार भार होने पर भी वह इतना हलका, उत्तेजक तथा उत्कर्षकारक है कि तनिक भी बोझिल नहीं लगता। नई नई जानकारी देने, हृदय की कोमल भावनाओं को जागरित करने तथा मानवप्रकृति के सन्देशों को उन्नत करने वाला होने से काका का गौरवशाली गद्य आनन्द एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाला है।

कालेलकर के लेखों के दो भाग, लोकमाता, स्मरण यात्रा, हिमालय नो प्रवास, ओतराती दीवालो,* जीवन नो आनन्द, जीवन-भारती, जीवन संस्कृति इत्यादि खोजपूर्ण, प्रसादगुणयुक्त तथा संस्कार प्रचुर साहित्य इतना आनन्दप्रद एवं रसपूर्ण है कि उसने काका कालेलकर को साहित्य निर्माताओं में सम्मानपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर दिया हैं।

---

* ओतराती दीवालो का हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक की अनुवादिका ने किया हैं जो 'उत्तर की दीवार' के नाम से नवजीवन कार्यालय अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

गांधीजी के प्रभाव से प्रवृत्त हुए तथा उन्हीं के रंग में रँगे हुए लेखकों में महादेव हरिभाई देसाई की गणना की जाती है महादेव भाई की स्वतन्त्र (मौलिक) कृतियाँ बहुत ही कम हैं। उन्होंने 'चित्रांगदा' तथा 'सत्याग्रह नी मर्यादा' दो भाषान्तर किये हैं। वे अनुवाद होने पर भी मौलिक रचनाओं जैसे लगते हैं। उनके द्वारा किया गया पं. नेहरू की आत्मकथा का भाषान्तर भी बहुत सुन्दर बन पड़ा है। उनकी केवल इतनी सी रचनायें भी उन्हें साहित्य में अमरता प्रदान करने वाली हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने पूज्य गांधीजी के अंग्रेजी लेखों का अनुवाद गुजराती में तथा गुजराती लेखों का अंग्रेजी में भाषान्तर करने में परा कोटि की सफलता प्राप्त की है। अपने सम्पूर्ण 'अहं' का सर्वथा लोप करके एक महान सन्त के साथ एकात्मकता का योग साध कर महादेव भाई ने बापूजी (महात्मा गांधी) तथा गुजरात की जो सेवा की है वह वास्तव में अनुपम, अद्वितीय तथा बहुमूल्य है।

बापूजी ने गुजरात के जीवन में अद्भुत प्रकार का विद्युत-संचार किया है। 'नवजीवन' से तथा बापूजी के आश्रम-जीवन से अनेकों युवकों को अनेक प्रकार की प्रेरणायें मिली हैं और इससे उनके आसपास अनकों कार्यकर्ता तैयार हुए हैं। नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट, वालजी गोविन्दजी देसाई, नरहरि परीख तथा छगनलाल जोशी जैसे कार्यकर्ताओं पर बापूजी का व्यापक प्रभाव पड़ा है! ऐसा ही व्यापक प्रभाव "सौराष्ट्र" के संचालकों पर भी पड़ा है। मेघाणीजी के जीवन-विकास में प्रेरणा तथा प्राण संचारित करने वाले बापूजी ही हैं। उनके जीवन को समझने तथा पूजने वाले मेघाणीजी जैसे गांधीभक्त ने 'युगवन्दना' द्वारा तथा व्यापक साहित्य में स्थान पाने योग्य अनेकों उपन्यासों एवं कहानियों के द्वारा ऋणमुक्त होने का अच्छा प्रयत्न किया है। गांधीजी तथा काका कालेलकर के लेखों के समान प्रेरक तथा

खोजपूर्ण न होने पर भी मेघाणीजी की समस्त रचनायें रोचक ही नहीं अपितु उत्तेजक भी सिद्ध हुई हैं। नैसर्गिक शक्ति की सूक्ष्मता व उच्चता लेखकों में गुणसमृद्धि करने वाली होती हैं। जिस पर प्रभु अधिक कृपालु होता है वह अधिक उच्च कोटि की कृतियों का सर्जन कर सकता है। गांधीजी की समता कालेलकर नहीं कर सकते, कालेलकर की समता मेघाणी से नहीं हो सकती फिर भी मेघाणीजी ने उपन्यासों, कहानियों व काव्यों के रूप में जो साहित्य हमें दिया है वह 'व्यापक साहित्य' में स्थान पाने योग्य है। वह विशाल जनसमाज में अधिक प्रसार पाने तथा लम्बे समय तक स्थायी रह सकने की योग्यता रखता है।

गांधीजी के जीवन तथा उनके द्वारा समग्र भारत में प्रसारित वातावरण से गुजरात में हुए प्रभाव को प्रकट करने वाले साहित्य का निर्माण भी उचित मात्रा में हुआ है। गांधीजी की वुद्धि, उच्च ध्येय तथा विचार सरणि को साहित्य में अमरत्त्व प्रदान करने वाला तो अभी कोई प्रकट नहीं हुआ है फिर भी ग्रामीण जीवन, युवकहृदय तथा गुजराती समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का कुछ वर्णन 'सोपान' ने करने का प्रयत्न किया है। अन्तर नी वातो, संजीवनी, जागता रहेजो, प्रायश्चित्त इत्यादि पुस्तकें गांधी-वातावरण के कारण उत्पन्न हुई मनोदशा का चित्रण करते हुए, समाज का अच्छा चित्र प्रस्तुत करतीं हैं।

ववलचन्द मेहता कृत 'मारूँ गामडुँ' प्रत्येक गुजराती वन्धु को, मुख्यतया युवक विद्यार्थियों को अवश्य ही पढ़ लेना चाहिये। व्यापक-साहित्य के भण्डार में ऐसी पुस्तकों की अधिक अभिवृद्धि होनी चाहिये। तभी व्यापक साहित्य सम्पूर्ण देश को यथार्थ लाभ पहुँचा कर उपकृत कर सकेगा।

बापूजी की विचारधारा से कई बातों में मतभेद रखने वाला समाजवादी साहित्य भी अब धीरे धीरे निर्मित होने लगा है। उसमें साहित्यिक गुण या साहित्य-गौरव की न्यूनता होने पर भी उसकी विचार प्रणाली अध्ययन करने योग्य है। चन्द्रभाई भट्ट तथा धनवन्त ओझा इस प्रकार के साहित्य-सर्जक हैं। चंद्रभाई भट्ट कृत 'मारी ना जाया' तथा धनवन्त ओझा कृत 'वैज्ञानिक समाजवाद' ध्यान आकर्षित करने वाली पुस्तकें हैं।
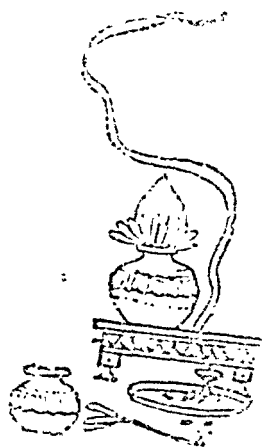
प्रकरण ११, वर्तमान स्थिति
(मई सन् १९५१ तक)

सत्तर वर्ष से अधिक आयु वाले विद्वानों में से कृष्णलाल, मोहनलाल झवेरी तथा बलवन्तराय क. ठाकोर अब तक कुछ न कुछ साहित्यिक प्रवृत्ति करने में प्रवृत्त हैं। अन्य लेखकों ने अपना रचनाकार्य समाप्त कर दिया लगता है।

ब. क. ठाकोर ने 'नवीन कविता विषे व्याख्यानों में काव्य-भावना, काव्यकला तथा काव्य के विभिन्न प्रकारों के विषय में विवेचना की है। उन्होंने नवीन लेखकों को प्रेरणा, प्रोत्साहन, मर्गदर्शन तथा मूल्यांकन से लाभान्वित करके विवेचना, सत्यनिष्ठा दुर्बोधता जैसे अनेकों विषयों को समझाया है एवं प्रौढ़ विद्वानों के लिये चिन्तनप्रेरक तथा अध्ययनकर्ताओं के लिये सहायभूत साधन-सामग्री प्रस्तुत की है। उन्होंने श्रीमती रैहाना अब्बास तैयबजी की अंग्रेजी पुस्तक 'दी हार्ट ऑफ़ ए गोपी' (The heart of a Gopi) के आधार पर "गोपीहृदय*" नामक कथा-काव्य गुजराती में लिखा है जो एक विशिष्ट प्रकार का अनुकाव्य ही है। मूल लेखिका के भावों का यथावत् चित्रण करके, कथा-भाग का सम्पूर्ण रीति से अनुसरण करते हुए, वर्णन में कुछ विस्तार-संकोच के साथ उन्होंने उसे इस खूबी से लिखा है कि स्वयं मूल लेखिका के समान श्रद्धालु अथवा भक्तिमय न होते हुए भी काव्य में

---

* The heart of a Gopi का हिन्दी अनुवाद 'गोपीहृदय' के नाम से इस पुस्तक की अनुवादिका ने किया है जो अभी अप्रकाशित है।

समाविष्ट श्रद्धा एवं भक्तिभाव में तनिक भी न्यूनता नहीं आने दी है। गोपीहृदय अनुकाव्य होने पर भी मौलिक कृति जैसा लगता है।

साठी पार कर जाने वाले विद्वानों में खबरदार, कालेलकर, मुन्शीजी, जिनविजयजी, रामनारायण पाठक, इत्यादि अपने अपने कार्यक्षेत्र में सश्रम विचरण कर रहे हैं। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो अब उन्होंने ऊर्ध्वगमन की परा कोटी पर विजय प्राप्त कर ली है।

बाद की दशाब्दी के लेखक रमणलाल, देसाई, धनसुखलाल मेहता, पूजालाल,, हरिहर भट्ट, त्रिभुवन गौरीशंकर व्यास, किशोर-लाल मश्रुवाला धूमकेतु इत्यादि से हमें अभी बहुत आशा है। वैसी ही आशा लीलावती मुंशी, हंसा मेहता, जयमन पाठकजी, ज्योत्स्ना शुक्ल तथा चन्द्रवदन मेहता से भी है। फिर भी ऐसा लगता है मानो इन म से अधिकांश व्यक्ति अपने अपने उत्तमोत्तम अर्ध्यसाहित्यदेवता की पूजा में समर्पित कर चुके हैं। इन सब साहित्य निर्माताओं की सेवा से धन्य व कृतार्थ हुआ हमारा साहित्य अब तो उस नवयुवक वर्ग से ही विशेष आशा रखता है, जिनकी धमनियों में नया रक्त उछला पड़ रहा है। वह आशा अवश्य फलवती होगी इसके शुभ चिन्ह भी दृष्टिगोचर हो गये हैं। इतना ही नहीं, उमाशंकर जोशी, सुन्दरम, स्नेहरश्मी, सुन्दरजी बेटाई, मनसुखलाल झवेरी, विश्वनाथ भट्ट, विजयराय वैद्य इत्यादि ने तो नव नव सौरभ से महकती हुई पुष्पाञ्जलियाँ भी साहित्य-देवता के चरणों में अर्पित की हैं।

सुन्दरम् कृत 'कोया भगत नी कड़वी वाणी' ने कटुता से भी मधुर तत्त्व प्रस्तुत किया है। 'काव्यमंगला' के अनेकों काव्यों ने गुजराती कविता में अद्भुत चित्र तथा विस्मय कारक कल्पनायें प्रस्तुत की हैं। यद्यपि 'वसुधा' ने नवीन प्रगति दृष्टिगोचर नहीं

होती फिर भी 'कर्ण' जैसे सर्वाङ्ग सुन्दर काव्यों से सुन्दरम् के यश व प्रतिष्ठा स्थिर हैं। इतना ही नहीं,-उन्होंने अर्वाचीन कविता के अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ द्वारा अपनी काव्य-शक्ति का सुफल गुजरात को समर्पित किया है।

उमाशंकर जोशी के लघु काव्य 'विश्वशान्ति" से काव्य रसिकों में भारी आशा का संचार हुआ था। गांधीजी की प्रवृत्तियों ने सारे भारत को हिला डाला था किन्तु नवयुवकों को उससे कविता-निर्माण की कोई भारी प्रेरणा नहीं मिली। प्रभात फेरियों के समय असंख्य गीतों का निर्माण अवश्य हुआ था। त्रिभुवन व्यास ने 'नहिं नमशे', 'रतन वा नो गरबो' तथा मेघाणी ने 'छेल्लो कटोरो', 'छेल्ली प्रार्थना', 'कोई नो लाड़कवायो' जैसे दस-पन्द्रह काव्य लिखे थे। उसके बाद गुजराती कविता को मिलने वाली सुन्दर भेंट एकमात्र यह 'विश्वशान्ति' ही है। तत्पश्चात् उमाशंकर भी कुछ काल तक उपन्यास, कहानी, नाटक लिखने की ओर प्रेरित हुए और सुन्दरम् भी कहानियों के मोहजाल में फँस गये फिर भी सुन्दरम् ने अर्वाचीन कविता के अध्ययन द्वारा एवं उमाशंकर जोशीने गंगोत्री, निशीथ, प्राचीना तथा आतिथ्य काव्य संग्रह समर्पित करके, 'क्लान्तकवि' के सम्पादन- कार्य द्वारा तथा 'अखो' एक अध्ययन से अध्ययन का आग्रह एवं प्रशंसनीय परिश्रम प्रकट करके इतना अच्छा प्रभाव डाला है की अपीन तीव्र बुद्धि, आग्रह भरी वृत्ति तथा संस्कारशील प्रसादपुनीत शक्ति के द्वारा नवयुवक साहित्य निर्माताओं में वे अग्रगण्य माने जाने लगे हैं।

उमाशंकर जोशी तथा सुन्दरम् से अनेकों विषयों में भिन्न प्रकार की काव्यसृष्टि उत्पन्न करने वाले सुन्दरजी बेटाई ने नरसिंहराव-नान्हालाल की काव्यप्रणाली का अनुसरण किया है, यद्यपि उन पर गांधी-वातावरण का प्रभुत्व तो है ही। उन्होंने 'ज्योतिरेखा' में

महाभारत के शस्त्रसन्यास की घटना चित्रित की है फिर भी उसमें आये अन्य काव्यों में गांधी-विचारधारा की स्पष्ट छाया देख पड़ती है। 'इन्द्रधनु' में व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक व्यवहार में गांधीजी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। फिर भी कुल मिला कर बेटाई की काव्य-सृष्टि नरसिंहराव-नान्हालाल की प्रणाली में ही विचरण करने में आनन्दित होती है। उनके प्रकृति विषयक काव्य नरसिंहराव की तथा मधुरगीत नान्हालाल की काव्य-सृष्टि की याद दिलाते हैं। बेटाई की भाषा तथा 'इन्द्रधनु', 'ज्योतिरेखा' के विषय मानो प्राचीन युग की परम्परा को ही टिकाये हुए हैं। विषयों एवं पद्धति के प्राचीन होने पर भी छन्द, अलंकार तथा भाषा की सरल मधुरता उनके काव्यों को सुन्दर विशिष्टत्व अर्पित करते हैं। उनकी रचनाओं में प्राचीन-अर्वाचीन विचारपद्धति तथा भाषावैदग्ध्य का सुन्दर सम्मिश्रण है। अतः उनकी कृतियों के आदरणीय व प्रिय हो जाने की पूर्ण संभावना है।

संस्कृतप्रचुर भाषा तथा विचारों को गंभीर परिधान से बोझिल बनाने वाले, 'फूलदोल' कृति से साहित्य निर्माताओं में उच्चस्थान प्राप्त, मनसुखलाल झवेरी ने 'आराधना' के द्वारा अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने व्यष्टि तथा समष्टि के सम्बन्धों को काव्य द्वारा आलेखित करके समाजवादी सिद्धान्तों को अपनी रचनाओं में रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। मेघाणी, उमाशंकर जोशी तथा सुन्दरम् की भाँति दलित वर्ग के लिये, श्रमजीवी समाज के लिये, पूँजीपतियों की स्वार्थी वृत्तियों से फैले अत्याचारों के विरुद्ध तथा उस अत्याचार से होने वाली जनता की दुःखद स्थिति के विषय में उन्होंने पर्याप्त मात्रा में लिखा है; किन्तु उनकी विचार पद्धति कुछ भिन्न प्रकार की है।

"व्यष्टि को समष्टि के लिये जीना चाहिये, समष्टि के व्यक्तियों को स्वव्यक्तित्व भुला कर समष्टि में ही आत्मविलोपन करना चाहिये"- इस प्रकार के विचार काव्य में प्रकट करने वाले मनसुखलाल पहले व्यक्ति हैं। 'आराधना' के पश्चात् प्रकाशित काव्यसंग्रह 'अभिसार' की भाषा में संस्कृतमयता कुछ कम हुई है, सर्जन प्रणाली में वैविध्य आया है, संवेदन का प्रवाह भिन्न भिन्न दिशाओं में प्रवाहित हुआ है और चिन्तनशीलता तथा रंजनात्मकता विस्तृत एवं विकसित हुए हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'शाकुन्तल' का भाषान्तर भी किया है और 'थोडाँ विवेचनो' लिख कर साहित्यिक रचनाओं तथा साहित्य निर्माताओं की आलोचना करते हुए काव्येतर क्षेत्र में कुछ आकर्षण उपस्थित किया है। उनकी ऐसी प्रवृत्ति आशाजनक तथा तत्त्वदर्शक होने पर भी अधिक समय तक चल नहीं सकी।

इन चार लेखकों के अतिरिक्त अन्य रचनाकार भी साहित्य देवता को अपने अपने अर्घ्य समर्पित कर रहे हैं। कुछ प्रौढ़ रचनाकार भी कुछ न कुछ साहित्यप्रसादी भेंट करते ही रहते हैं। त्रिभुवन व्यास "मेघदूत" के भाषान्तर के द्वारा नवीन मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। 'खाख नाँ पोयणाँ" तथा "आलवेल" के कर्त्ता वैशम्पायन ने नवयुग के वैशम्पायन की उपाधि धारण करके लोकरुचि को रुचिकर, लोकभोग्य काव्य लिखे हैं। स्नेहरश्मि ने 'पनघट' कविता संग्रह भेंट किया है तथा प्रह्लाद पारेख, पाराशर्य, प्रह्लाद पाठक, कारणकिया, रमण वकील, भानुशंकर व्यास, कोलक, रमणिक झरोलवाला, पतिल, नाथालाल दवे, नन्दकुमार पाठक, रतुभाई देसाई, हरिश्चन्द्र भट्ट, मुरली ठाकुर, इन्दुलाल गांधी, गोविन्द ह० पटेल, चुनीलाल भगत, रामप्रसाद शुक्ल इत्यादि रचनाकारों ने अपने अपने कविता-संग्रहों के द्वारा काव्यसाहित्य

को बहुत समृद्ध बनाया है। इनके अतिरिक्त भी हाल में ही पहली बीसी पार करने वाले प्रजाराम रावल, हसित बूच, पिनाकिन ठाकोर, कान्ति वड़ोदरिया, निरंजन भगत, राजेन्द्र शाह, वेणीभाई पुरोहित इत्यादि साहित्यकार मासिक पत्रों के द्वारा अपनी अपनी रचनायें पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें आशा रखना चाहिये कि इन लेखकों में से भविष्य के श्रेष्ठ कवि अवश्य उत्पन्न होंगे।

वर्तमान युग में जिस प्रकार हमें कविता का सुमधुर परिपाक उचित मात्रा में मिल रहा है ठीक वही बात उपन्यास तथा कहानियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सरस्वतीचन्द्र की श्रेणी में रक्खा जाने योग्य उपन्यास अभी तक उद्भव नहीं पाया है ? उपन्यास क्षेत्र में मुन्शीजी तथा रमणलाल के स्थान की पूर्ति करने वाला अथवा कहानी क्षेत्र में धूमकेतु को भुला देने वाला साहित्यकार अभी कोई उत्पन्न नहीं हुआ है, फिर भी मेघाणीजी से प्रेरणा प्राप्त करने वाले पन्नालाल पटेल तथा ईश्वर पेटलीकर उचित परिमाण में अपने प्रकाशन भेंट कर रहे हैं।

उपन्यास तथा कहानियों में अब तक नागरिक जनता व उच्च वर्ग के मनुष्यों का ही कथासूत्र ग्रहण किया जाता रहा है। रमणलाल देसाई ने जनसाधारण का कथासूत्र ग्रहण करके रचना कार्य प्रारंभ किया और 'ग्रामलक्ष्मी' में उन्होंने ग्रामीण जनता के सम्बन्ध में भी लिखा। मेघाणीजी ने लोक-कथाओं के आधार पर अपनी कृतियों का सर्जन किया है इसलिये ग्रामीण जनता तथा नगर के निम्न वर्ग को उन्होंने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इतना होने पर भी उनकी तथा रमणलाल देसाई की उक्त प्रकार की रचनायें कम ही हैं। पन्नालाल पटेल तथा ईश्वर पेटलीकर ने अधिकांश में ग्रामीण जीवन, ग्रामीण जनता, ग्रामीण

प्रदेशों एवं वहाँ के श्रमजीवियों, डाकुओं, लुटेरों के सम्बन्ध में लिखा है। उनकी कहानियों के प्रारंभ, विकास तथा परिणाम में, त्यों ही भाषा के स्वरूप तथा लेखनशैली में प्राचीन प्रणाली से कुछ भिन्न ही प्रकार दृष्टिगत होता है—और वह प्रकार मनोगम तथा रुचिकर है। पन्नालाल पटेल ने 'मलेला जीव', 'यौवन', 'मानवी नी भवाई' उपन्यास व 'सुखदुःख ना साथी', 'पानेतर नाँ रंग' कहानियाँ; और ईश्वर पेटलीकर ने 'लख्या लेख', 'धरती नो अवतार', 'पंखी नो मेलो', 'पाताल कुवो' उपन्यास तथा 'ताणा-वाणा', 'पटलाई ना पेच' इत्यादि कहानियाँ हमें दी हैं। ग्रामीण जनता विषयक रचनाओं में चिरस्थायी साहित्यिक गुण मिल सकते हैं कि नहीं इस शंकास्पद प्रश्न का उत्तर मेघाणी कृत 'माणसाई ना दीवा' के द्वारा हमें मिल जाता है। रविशंकर महाराज से भेंट होने के पश्चात् लिखी गई पुस्तकों में वह पुस्तक ग्रामीण जनता के निकट सहवास, ग्रामीण जीवन के प्रत्यक्ष परिचय तथा ग्रामनिवासियों के गहन अध्ययन के पश्चात् लिखी गई है अतः उसमें पूर्णतया ग्रामीण वातावरण एवं ग्रामीण घटनाओं का चित्रण है। इतना होने पर भी वह मात्र पठनीय ही नहीं,–अध्ययन करने योग्य तथा उपदेशप्रद है; शिष्ट साहित्यिक कृतियों में स्थान पाने योग्य है। पन्नालाल पटेल तथा ईश्वर पेटलीकर की पुस्तकों में मेघाणी कृत 'माणसाई ना दीवा' के समान प्रतिभा का तेज, बुद्धि का चमत्कार अथवा साहित्य-गौरव अधिक नहीं हैं फिर भी निःसन्देह वे रचनायें अत्यन्त आशापूर्ण तथा पाठकों को अत्यन्त प्रिय तो हैं ही।

अधिकांश वाचक कहानियों की ओर आकर्षित होते हैं अतः कहानीकार अमित उत्साह से अपनी कृतियाँ प्रकाशित करते जाते हैं। अनेकों अनुवाद भी हुए हैं। इस प्रकार के प्रकाशनों में

उच्च साहित्यिक कृतियाँ बहुत कम होती हैं। उनके क्षणजीवी होने पर भी यदि उनमें से किसी में कथारस के अतिरिक्त उच्च उद्देश, सुन्दर आदर्श, रमणीय कार्यवेग, आकर्षक ध्येय या मनोहारी भाव-वर्णन हुए तो वे कुछ अधिक समय तक लोकप्रिय रहतीं हैं। अनुवाद तथा अनुकरणात्मक ग्रन्थों को इस प्रारंभिका में स्थान नहीं है। मौलिक रचनाओं में से भी प्रमुख कृतियों का ही नामोल्लेख मात्र हो सकता है। ऐसे लेखकों में से गौतम, दर्शक, मृदुल, चन्दुभाई शुक्ल, चुनीलाल मड़िया, गोविन्दभाई अमीन, उमेदभाई मणियार मुरली ठाकुर की कृतियों को जनता उचित मात्रा में पढ़ती है। इसी प्रकार के एक डाक्टर भी रचनाकार हो गये हैं। स्वभाव से ही परोपकारी होने से वे सामान्य जनता में कार्यरत थे। उनमें अपने अनुभवों को कहानियों के रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति थी। अतः उन्होंने प्रत्यक्ष घटित घटनाओं को अपने अनुभवों के आधार पर कहानियों के रूप में परिवर्तित करके 'दुखी नी दुनिया मां,' तथा 'आर्यो हैयाँ' नामक दो कहानी संग्रह प्रकाशित किये हैं। वे कहानियाँ शहर की अति साधारण श्रेणी की जनता के स्वानुभवों के आधार पर ही रची गई होने से पाठकों को वर्तमान दशा का सत्य-दर्शन करा सकती हैं। उनके रचयिता डा. व्रजलाल मेघाणी जिस समय अपने सेवाकार्य में संलग्न थे उसी समय जातीय वैमनस्य की विषम ज्वाला में आहुत (स्वाहा) हो गये। अतः हमें उनकी केवल दो ही कृतियाँ मिल सकीं।

कहानियाँ लिखने का एक निम्न प्रकार;-विनोदात्मक तथा अगंभीर वृत्ति से लिखा जाने वाला प्रकार,-रमणभाई के समय से ही प्रयुक्त होता चला आया है। उक्त प्रकार के रचनाकारों में मस्त फकीर, धनसुखलाल मेहता तथा ज्योतीन्द्र दवे ने अब तक अपनी सर्जनशक्ति को स्थिर रक्खा है किन्तु उनके चरणचिन्हों का अनु-

सरण करने वाला केवल एक साहित्यकार सामने आया है। मूल-राज अंजारिया ने "टुँकुँ अने टच," 'लाकड़ा ना लाडु' तथा 'आनन्द बाजार' नामक तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अंजारिया की रचनायें विनोदात्मक अथवा अगंभीर वृत्ति की अपेक्षा तनिक स्थूल तथा चुटकुलों जैसी लगती हैं; फिर भी वे सद्यः आनन्द प्रदान करने तथा निर्मल हास्य की सृष्टि करने में परम यशस्विनी सिद्ध हुई हैं।

गुजराती के साहित्यसर्जक तथा साहित्यसेवी साधारणतया अमुक मर्यादित क्षेत्र में ही विचरण करते रहते हैं। कविता, उप-न्यास, कहानियों के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियों को अपनाने वाले बहुत कम हैं। नाटक लिखने के लिये उच्च कोटि की प्रतिभा भी कहीं दिखाई नहीं देती। इब्सन और शेक्सपीयर के नाटकों के भाषान्तरों के अतिरिक्त नाट्य-साहित्य में कोई अभिवृद्धि नहीं हुई। कुछ एकांकी नाटक अवश्य लिखे गये किन्तु वे तो, आकार में कुछ ही भिन्नता लिये हुए,-कहानियों के ही एक 'प्रकार' से लगते हैं। भाषाशास्त्र व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, जीवनचरित्र, प्रवास, भूगोल, इतिहास इत्यादि विषयों की ओर तनिक भी आकर्षण प्रतीत नहीं होता।

भाषाशास्त्र में व्रजलाल कालिदास शास्त्री के पश्चात् नरसिंह राव के अंग्रेजी में दिये गये भाषण 'विल्सन फिलालाजीकल लेक्चर्स'* भोगीलाल सॉडेसरा तथा केशवराम काशीराम शास्त्री द्वारा किया गया कार्य;-कुल मिला कर इतना ही साहित्य है। व्याकरण के क्षेत्र में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं है। हाँ; कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी कृत 'वृहद्व्याकरण' विषय का ठीक ठीक निरूपण करने वाला

---

* विल्सन फिलालाजीकल लेक्चर्स के दो भागों में से एक का गुजराती भाषान्तर फारवस सभा बम्बई ने प्रकाशित किया है।

है,- अध्ययन करने योग्य है; किन्तु वह गुजराती भाषा के स्वगत स्वतन्त्र; व्यवहार प्रचलित स्वरूप के आधार पर नहीं लिखा गया होने से गुजराती व्याकरण के अभाव को दूर नहीं कर सकता। छन्दों में रामनारायण पाठक ने "एक यादगार" पुस्तक लिख कर भारी क्षति की पूर्ति कर दी है। कमलाशंकर त्रिवेदी कृत काव्यसाहित्य विषयक "काव्यसाहित्य मीमांसा" अपने विषय की पहली पुस्तक है।

जीवन चरित्र की कतिपय प्राचीन पुस्तकों में नाम मात्र की ही अभिवृद्धि हुई है। कान्तिलाल पंड्या कृत 'श्रीयुत गोवर्द्धनराम', ब० क० ठाकोर तथा नरहरि परीख कृत "स्व० अम्बालाल भाई" (दो भिन्न पुस्तकें), विश्वनाथ भट्ट कृत 'वीर नर्मद' तथा हाल ही में प्रकाशित हुए रतिलाल मोहनलाल त्रिवेदी कृत "आनन्दशंकर भाई" में ही शिष्ट कृतियों की परिसमाप्ति हो जाती है। जीवन चरित्र के आत्मकथा विभागमें,-प्राचीन युग के नारायण हेमचन्द्रकी अधूरी आत्मकथा 'हुँ पोते' के बाद महात्मा गांधी की आत्मकथा ही एक मात्र पुस्तक है। डायरी साहित्य अब नया ही प्रकाशित हुआ है। 'महादेव भाई नी डायरी' हाल ही में प्रकाशित हुआ एक अत्यन्त ही सम्माननीय बहुमूल्य ग्रन्थरत्न है। 'गुजराती' साप्ताहिक में प्रति सप्ताह प्रकाशित होने वाली 'नरसिंहराव नी डायरी' डायरी साहित्य में उल्लेखनीय अभिवृद्धि है। अहमदाबाद निवासी डा० हरिप्रसाद की डायरी का भी कुछ अंश प्रकाशित हुआ है। ऐसे साहित्य का पुस्तकाकार प्रकाशित होना इष्ट है।

प्रवास की पुस्तकों में उल्लेखनीय ग्रन्थ 'गोमंडल परिक्रमा' के पश्चात् काका कालेलकर कृत 'हिमालय नो प्रवास' तथा रतिलाल त्रिवेदी कृत 'प्रवास नां संस्मरणो' ये दो ही ग्रन्थ हैं। सुमति मेहता कृत 'दक्षिण यात्रा' पुस्तक में तीर्थस्थानों का अच्छा परिचय

दिया गया है। गुजरात विद्यासभा द्वारा प्रकाशित "भौगोलिक कोष" के अतिरिक्त भूगोल का विषय नितान्त अस्पष्ट-सा ही है। इतिहास के सम्बन्ध में भी यही बात है। नवलराम कृत 'अंग्रेज लोक नो इतिहास" पुराना है। "प्लुटार्क नुँ जीवन चरित्र" भी ऐसी ही पुस्तक है। कालेलकर कृत 'पूर्वरंग' दुर्गाशंकर शास्त्री के लेखों का संग्रह 'इतिहास संशोधन' और रत्नमणिराव भीमराव कृत अहमदाबाद तथा खंभात के इतिहास संबंधी पुस्तकें ही हमारा 'ऐतिहासिक साहित्य' है।

व्युत्पत्ति भाषाशास्त्र का विषय होने से उसके सम्बन्ध में अलग उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु शब्दकोष के विषय में उल्लेख करना आवश्यक है। नर्मदाशंकर कृत 'नर्मकोष' के बाद एक पारसी सज्जन ने कोष तैयार करने का प्रयत्न किया था; किन्तु वह कार्य अधूरा ही रह गया। उसके बाद रचा गया 'भगवन्त कोष' पूरा लिखा गया है, यद्यपि अभी तक उसके केवल चार भाग ही प्रकाशित हो पाये हैं। इनके अतिरिक्त उल्लेखनीय कोष नवजीवन कार्यालय का 'जोडणी कोष' ही है। लल्लूभाई पटेल तथा भानुसुखराम मेहता ने कोष अवश्य तैयार किये हैं किन्तु शुद्धता, संशोधन तथा सावधानी में अनुमानपरक होने से वे आवश्यक क्षति की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी (गुजरात विद्यासभा) ने कोषों के लिये ठीक प्रवृत्ति अपनाई है। उसने 'भाषा नो कोश', 'दार्शनिक कोश', 'पारिभाषिक कोश,' 'फारसी गुजराती कोश,' 'भौगोलिक कोश;'—यों भिन्न भिन्न कोष तैयार करवाये हैं। नर्मदाशंकर के 'नर्मकथा कोश' जैसा 'पौराणिक कोश भी तैयार करवाया है किन्तु उस संस्था की प्रकाशन पद्धति ऐसी है जिससे जन साधारण उसका लाभ नहीं ले सकते।

थीं साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में से कुछ में ही ठीक सी प्रवृत्ति हुई है। कविता, उपन्यास तथा कहानियों के अतिरिक्त यदि तनिक भी सन्तोषप्रद कुछ कार्य हुआ है तो वह साहित्य-समालोचना, साहित्य चर्चा तथा कुछ अंशों में साहित्यिक रचनाओं का परिचय देने वाले क्षेत्र में हो। इस क्षेत्र में नरसिंहराव, केशवलाल ध्रुव, रमणभाई तथा आनन्दशंकरजी ने अच्छा कार्य किया है। इन चारों साहित्यकारों के जो लेख भिन्न भिन्न मासिक पत्रों में बिखरे पड़े थे वे सब अब ग्रन्थस्थ कर दिये गये हैं। नरसिंहराव के मनोमुकुर का पहला भाग, आनन्दशंकर कृत 'आपणो धर्म' तथा 'साहित्य विचार' अन्य प्रकार से प्रकाशित हुए हैं। मणिलाल नभुभाई कृत 'सुदर्शन गद्यावलि' भी प्रकाशित हो गई है। इसके अतिरिक्त बड़ोदा की 'सयाजी साहित्य ग्रन्थमाला' में रामनारायण पाठक के लेख, ब० क० ठाकोर के विविध भाषण तथा विजयराय वैद्य की 'गुजराती साहित्य नी रूपरेखा' प्रकाशित हुए हैं। विष्णुप्रसाद कृत 'विवेचना', विश्वनाथ मगनलाल भट्ट कृत 'साहित्य समीक्षा' विजयराय वैद्य कृत 'जुही अने चमेली', मनसुखलाल कृत 'थोडाँ विवेचनो', अनन्तराय रावल कृत 'साहित्य विहार' तथा इनके अतिरिक्त नवलराम जगन्नाथ, रमणलाल देसाई, रामचन्द्र शुक्ल, मोहनलाल पार्वतीशंकर देव की रचनायें प्रकाशित हुई हैं।

साहित्यिक रचनाओं का परिचय देने का कार्य भी सर्वथा निराशाजनक नहीं है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने 'जैन गुर्जर

कविओ' के दो भाग प्रकाशित किये हैं। केशवराम शास्त्री ने 'आपणा कविओ' तथा 'कवि चरित' के द्वारा अच्छा परिचय दिया है। गुजराती साहित्य का आद्योपान्त इतिहास प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति सबसे पहले गोवर्द्धनराम ने "क्लासिकल पोयेट्स ऑफ़ गुजरात" (Klassical poets of Gujrat) नाम से अंग्रेजी में दिये गये भाषणों के द्वारा अपनाई थी। इसके बाद कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने 'माइलस्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर" (Milestones in Gujrati literature) तथा 'फ़ादर माइलस्टोन्स' (Farther Milestones.) अंग्रेजी में लिखे। गुजराती में साहित्य निर्माताओं तथा साहित्यिक रचनाओं के सम्बन्ध में मिलने वाली जानकारी केवल प्राचीन काव्यमाला, बृहत् काव्यदोहन, गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी तथा फारबस सभा के प्रकाशनों की प्रस्तावनाओं, गुजराती साहित्य परिषद् के सभापतियों के भाषणों, 'देही विदेही साक्षरो' तथा 'साक्षर रत्नो' नामक पुस्तकों में प्राप्त होती है। गुजराती साहित्य के इतिहास का सर्व प्रथम ग्रन्थ 'साहित्य प्रवेशिका' सन् १९२२ में प्रकट हुआ। अंग्रेजी में मुन्शी जी की पुस्तक 'गुजरात ऐण्ड इट्स लिट्रेचर' (Gujrat and its Literature) प्रकाशित हुई है और गुजराती में दूसरी पुस्तक 'गुजराती साहित्य नी रूपरेखा' सन् १९४३ ई० में प्रकाशित हुई। 'रूपरेखा' में ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों का परिचय भक्तिप्रेरित गुणैकदृष्टि से दिया गया है। यों गुजराती में भाषा साहित्य के इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें अभी तक केवल दो ही हैं।

इस प्रकार की इतनी प्रवृत्ति होने पर भी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हो कर बैठ रहने से काम नहीं चल सकता। साहित्य के निर्माण में नरसिंह–मीरा की स्वाभाविक उच्चता, प्रेमानन्द-श्यामल की श्रमसाध्य सफलता, अखा–धीरा–भोजा के ज्वलित हृदय की ऊर्मियों का उभार, दयाराम-दलपत का भाव-विनोद से बहता हुआ काव्य प्रवाह, गोवर्द्धनराम–नान्हालाल के उच्च आदर्श, प्रसादपूर्ण गगनविहारी कल्पना तथा विशुद्धि विकास का आग्रह इन सब विषयों में वर्तमान साहित्य परिमाण में तनिक भी सन्तोषदायक नहीं दिखाई देता। महाकाव्य या बृहत्काव्य लिखने की प्रवृत्ति किसी ने भी नहीं अपनाई। केवल ऊर्मिकाव्य, गीतिकाव्य तथा रासकाव्यों में सन्तोषप्रद प्रवृत्ति अवश्य हुई है। 'सरस्वतीचन्द्र' के समकक्ष में रक्खा जाने वाला उपन्यास तो जब मिल सके तभी सही। हां, आधुनिक उपन्यासों में किसी किसी में कलाविधान, कार्यवेग, संवाद-चातुर्य तथा घटनाओं के तारतम्य अच्छी मात्रा में मिलते हैं। इन पर चाहे जितना बल दिया जाय फिर भी जो उपन्यास जीवन के आदर्श को उन्नत करने वाला, शुद्धि देने वाला, पवित्र बनाने वाला नहीं हैं वह चाहे जितने सुन्दर ढंग से लिखा गया होने पर भी निम्न श्रेणी का ही माना जाना चाहिये। उपन्यासों की भाँति ही श्रेष्ठ कहानी वही कही जा सकती है जो मानवजीवन की पवित्रता तथा उच्चता को आदर्श मानती हो और क्षुद्र सांसारिक जीवन के मायाजाल से ऊँचा उठा कर स्वर्गीय विहार का आनन्द प्रदान करती हो। ऐसे पवित्र आदर्श या भावना से विहीन साहित्य चाहे जितना मनोरंजक होने पर भी निम्न श्रेणी का ही माना

जाना चाहिये। गुजरात के युवक साहित्यसेवी 'कला कला के लिये' (Art for Arts sake) के झूँठे भ्रम में न भटक जायँ; वे यथार्थवाद के मिथ्या मोह में न फँस जायँ। परमात्मा करे, उनकी दृष्टि शुद्ध, पवित्र सत्य के ही दर्शन करे और सच्चे, शुद्ध, गहन, पावनकारी तथा उन्नायक साहित्य के निर्माण की ओर ही उनकी शुभ्र प्रवृत्ति हो,-जिससे हमारा साहित्य पूर्णतया विकसित हो कर उन्नतम कक्षा पर पहुँच जाय। यदि ऐसा होगा तो भारत के और संभवतः विश्व के साहित्य में गुजराती साहित्य उच्च स्थान प्राप्त कर सकेगा।
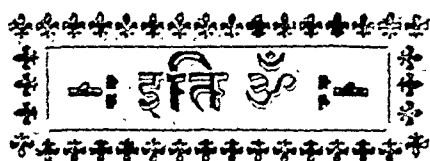
पहले कृपया प्रेस की इन अशुद्धियों को शुद्ध करें:—
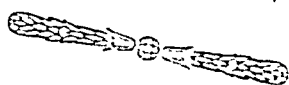
पृ०	पंक्ति	अ०	शु०
१	७	भापा	भापा
१	१८	सम्पक	सम्पर्क
३	२	के	के लिये
४	६	प्राचोन	प्राचीन
१०	२१	वर्तात्	वतात्
११	१४	अपनं	अपने
११	१८	स्वरूप	स्वरूप
१२	५	वेधव्य	वैधव्य
१२	२०	वापस	वापस
१४	१५	मापा	भापा
१६	८	कि	की
१७	१४	समात	समास
१७	१६	अचार	प्रचार
२२	२२	हो	होता
२३	२४	स्त्रियों	त्रियां
२४	१६	नरहरी	नरहरि
२४	१७	गुजराति	गुजरातियों
२६	१४	प्रवृत्त	प्रवृत्त

पृ०	पंक्ति	अ०	शु०
२७	३	उनसे	उसने
,,	११	उहदेश	उपदेश
,,	१२	प्रेरणापद	प्रेरणाप्रद
,,	२५	उनकी	उसकी
३०	१७	सुधारनें	सुधारने
३२	१८	तथा उनके रीति-रिवाजों	उनके रीति रिवाजों तथा
,,	२२	वाही	वादी
३४	११	अत्यल	अत्यन्त
३५	६	प्रमाणित	प्रामाणिक
३८	२	सम्पति	सम्पत्ति
३६	३	और	ओर
,,	५	कालीदास	कालिदास
४०	८	साहित्य	व साहित्य
४१	१३	दिया।	दिया गया।
४२	२०	विपरित	विपरीत
४५	३	मणीलाल	मणिलाल
४७	११	दता	देता
४८	७	रंग (दूसरा)	रँग
५६	१६	उत्तकृष्ट	उत्कृष्ट
,,	२४	जीवनव्यवसायो	जीवन व्यवसायी
५६	१३	ललीत	ललित
६१	१६	साहित्यका	साहित्य का
६४	१५	नतन	नर्तन
६६	६	सम्मलित	सम्मिलित
,,	१७	वर्स	सर्व

पृ०	पंक्ति	अ०	शु०
६७	१५	तत्वज्ञान	तत्त्वज्ञान
"	२२	वे	के
७०	१०	विद्यवान	विद्यमान
"	१७	अघोध	अबाध
"	२१	सवथा	सर्वथा
७२	१४	दिग्विजय	दिग्विजयी
"	२३	काव्यों	वाक्यों
७६	३	वाले	वाले
"	१३	प्रमुख ...	प्रमुख....
"	२५	मुक्तया	मुख्यतया
७८	१२	अव्यन	अध्ययन
७९	१६	में गुणाठ्य	में गुणाढ्य
८०	२२	ही	हो
८१	३	को	की
८२	३	अलत	अतल
"	८	ने	में
"	१९	अभिरुच	अभिरुचि
८३	२१	की	को
८५	३	विनोदि	विनोदी
"	८	(विनोद)	(विनोदी)
८७	१७	अविनीत	अभिनीत
९०	२४	अव्ययन	अध्ययन
९१	२४	में	में
९२	६	जैसी	जैसे
९४			नाटक

पृ०	पंक्ति	अ०	शु०
९९	५	लेख्रों	लेखों
१००	२	आकर्पण	आकर्पण
१०१	२५	भिन	भिन्न
१०६	१२	मूत	भूत
१०७	६	कोटी	कोटि
,,	९	त्रिमुवन	त्रिभुवन
,,	१३	म	में
,,	१४	का	की
,,	१९	स्नेहरश्मी	स्नेहरश्मि
१०८	१८	कार्य	काय
,,	२०	की अपीन	कि अपनी
,,	२१	त्रत्ति	वृत्ति
१११	१२	?	।
११२	२४	आकर्शित	आकर्पित
११३	१५	।कया	क्रिया
,,	१९	जाताय	जातीय
११४	१२	इन्सन	इन्सन
११७	१९	देव	दवे
१२०	६	शुत्र	शुभ